अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

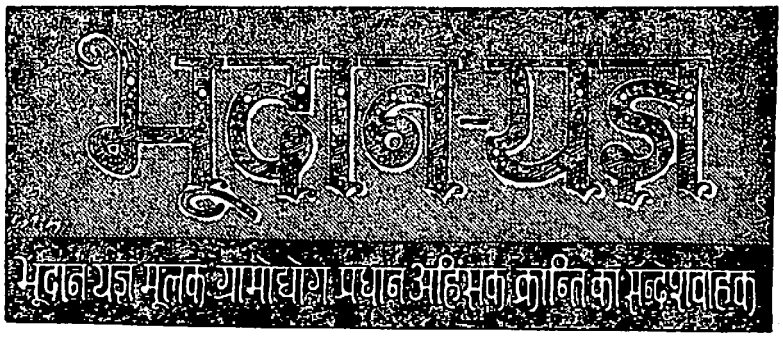

सौर श्रावण १८, शक १८७९ सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार
वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति २ आना

नया क़दम !

...गाँव-गाँव पर शांति-सेना का नैतिक प्रभाव रहेगा, तभी देश बचेगा। नहीं तो देश की रक्षा खतरे में है ! योजना इस तरह की होनी चाहिए कि सरकार को मिलिटरी या पुलिस की योजना करने का मौका ही न मिले ! इतनी आत्मरक्षण-शक्ति होनी चाहिए। लेकिन यह संरक्षण-शक्ति आयेगी कैसी ? उसके लिए समाज की आर्थिक शक्ति बनानी पड़ेगी। इसलिए शांति-सेना ही नित्य 'सेवा-सेना' होगी। वे ग्रामदान-भूदान का प्रचार करेंगे, लोगों की सेवा करेंगे और मौके पर बलिदान देने के लिए तैयार रहेंगे। यह भूदान-यज्ञ की नयी प्रक्रिया है। साधारण भूदान के बाद में हमने छठा हिस्सा मांगना शुरू किया। फिर मालकियत मिटाने का आवाहन दिया। ग्रामदान में से ग्रामराज्य निकला। अब ग्रामरक्षण की बात इसीमें से आयी है। आखिरी चीज; शांति-सेना केरल में सूझी है, इस वास्ते केरल पर ज्यादा जिम्मेदारी है।

—विनोबा

वर्ष-३, अंक-४५ 卐 राजघाट, काशी 卐 शुक्रवार, ९ अगस्त, '५७

सन् '५७ तक और बाद में !

प्रश्न : ५ करोड़ एकड़ जमीन सन् '५७ के अंत तक नहीं मिली, तो अगला कदम क्या है ?

विनोबा : यह '५७ के अंत तक प्रयत्न करने के बाद आगे सोचना चाहिए। जब हम पर्वत पर चढ़ते हैं, तो मालूम होता है कि सामने जो शिखर है, उस पर चढ़ें कि हम पर्वत के शिखर पर पहुँचे ! परंतु जब आगे बढ़ते हैं, तो लगता है, आगे एक और भी शिखर है ! आगे जाते हैं, तो फिर मालूम होता है, और भी आगे शिखर है। याने एकेक पर्व चढ़ना पड़ता है। इसीलिए उसको 'पर्वत' कहते हैं। तो सोचा गया था कि '५७ के अंत तक एक पर्व चढ़ा जाय और बाद में आगे का सोचें।

परंतु हमने '५७ के अंत के पहले ही अगला कदम सोच लिया ! वह सहज ही हमारे सामने आया। ज्यादा सोचना भी नहीं पड़ा। हमने तय किया कि हम ग्रामदान का ही संदेश फैलायें। व्यक्तिगत मालकियत छोड़ने की प्रेरणा देंगे, तो ४० करोड़ एकड़ भूमि हाथ में आ जायेगी ! ५ करोड़ तो उसका एक हिस्सा था। इसलिए कुल गांवों का ग्रामदान और लोग सहकारी पद्धति से काम चलायें, यह अगला कदम हमने लोगों के सामने रखा। अभी तक ४०-४५ लाख एकड़ जमीन मिली है। उसमें से यह युक्ति स्वाभाविक रूप से हाथ में आ गयी। कई लोगों को भूदान से ग्रामदान आसान मालूम हुआ। ग्रामदान मिलने लगे। हवा तैयार होने लगी और व्यक्तिगत हृदय-परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक हवा तैयार हो गयी। एक राह खुल गयी और यह एक नया दर्शन '५७ के अंत के पहले ही हुआ। यह इस कार्य की सफलता का लक्षण है।

अब यह पूछा जा सकता है कि ग्रामदान का काम नहीं होगा, तो क्या किया जायेगा ? यह सवाल पूछना आलस्य का लक्षण है। अभी-अभी जिसकी शादी हुई है वह, "पति मरेगा, तो क्या किया जाय," यह कभी सोचती है ? श्रद्धा से प्रयत्न करना है। उसके बाद ही अगला कदम सूझेगा। घर में बैठे-बैठे चिंतन से या केवल ध्यान से मसला हल करने लगेंगे, तो विचार नहीं सूझेगा। पुराण की कथा है। परमेश्वर ने ब्रह्मदेव को आज्ञा दी कि तुम सृष्टि की रचना करो। उसके पास दुनिया को बनाने का मसाला तो था नहीं। वह बैठ गया और सोचने लगा। खूब ध्यान-चिंतन किया। आखिर पागल बनने लगा। तब उसने तप किया। उसके बाद उसको प्रमेय सूझा। उसका एक सुंदर मंत्र वेद में आता है : "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।"—"प्रबल तपस्या से ऋत और सत्य का दर्शन हुआ।" फिर सृष्टि उत्पन्न करने का मार्ग खुल गया।

इस वास्ते बिना प्रबल तपस्या के, बिना कर्म के घर में बैठे रहेंगे, तो कार्य नहीं होगा। पर्वत के नीचे खड़े हैं और चर्चा चल रही है कि पर्वत के ऊपर से क्या दिखेगा ! नीचे से ही आँख फाड़-फाड़ कर ऊपर का दृश्य देख रहे हैं। पर सामने तो पेड़ ही पेड़ दीखते हैं। वह ऊपर जायेगा, तभी न पर्वत के ऊपर का दृश्य दिखेगा ? भूदान के बाद का कदम तो पहले ही मिल गया है। ग्रामदान की बात चली, तो हमारा अनुभव बढ़ने लगेगा। ग्रामदान के आगे क्या करना होगा, इसका भी दर्शन हुआ है ! पैदल चलने से यह सारा चिंतन का मौका मिलता है और कार्यकर्ता तथा जनता की प्रगति का दर्शन होता है। इसलिए ग्रामदान के बाद आगे क्या होगा, यह भी सूझता है। उसकी शुरूआत हमने अभी से कर दी है। शांति-सेना का कार्य आगे का काम है। वह कल्पना हम धीरे-धीरे विकसित कर रहे हैं।

(क्विलांडी, कोलीकोड़ २५-७)

—

काँग्रेस की सदस्यता से मुक्ति : मेरा निवेदन !

(वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी)

मैंने सन् १९२१ में महात्मा गान्धी के नेतृत्व में काँग्रेस के एक सैनिक की हैसियत से जनसेवा-कार्य में अपने जीवन को अर्पित किया और तब से अब तक यथासाध्य आजादी की लड़ाई एवं रचनात्मक कार्यों में अपनी शक्ति लगाता रहा। पूज्य महात्मा गान्धीजी के नेतृत्व में देश को सन् १९४७ में राजनैतिक आजादी प्राप्त हुई और १९४८ के प्रारंभ में वे इहलोक छोड़ कर चले गये।

अनेक कारणों से काँग्रेस पूज्य बापू के परामर्शानुसार लोकसेवक-संघ नहीं बन सकी और पार्लियामेंटरी कार्यक्रम ही संस्था का मुख्य कार्यक्रम हो जाने के कारण मेरे जैसे व्यक्ति को, जो काँग्रेस जैसी राजनैतिक संस्था का सदस्य होते हुए भी राजनीति के बजाय लोकनीति एवं लोकसेवा को अपना श्रेष्ठ धर्म मानता हो, विशेष आकर्षण नहीं रह गया था।

इधर देश में राजनैतिक स्वतंत्रता की स्थापना के बावजूद आर्थिक अन्याय, शोषण तथा विषमता के कारण जो एक निराशा का वातावरण व्याप्त हो रहा था, उसे दूर करने के लिए विनोबाजी ने भूदानयज्ञ-आन्दोलन को १९५१ में प्रारंभ किया। इस आन्दोलन ने लोकमत-परिवर्तन एवं लोकशक्ति से एक महान् समस्या का अहिंसा के द्वारा समाधान का मार्ग उन्मुक्त किया और आवाहन किया—लोक-सेवा में जीवन अर्पण करने वाले लोकसेवकों को, इस यज्ञ की सफलता में अपना जीवन लगाने के लिए। इससे देश में जिस वातावरण का निर्माण हुआ, उसका भी अप्रत्यक्ष रूप से मेरे ऊपर असर पड़ा और मैं १९५२ के जून में काँग्रेस की सक्रिय राजनीति से अलग हुआ और रचनात्मक-कार्य द्वारा लोकसेवा करने की दृष्टि से देहात में एक सर्वोदय-आश्रम (रानीपतरा, जिला पूर्णियाँ, बिहार में) स्थापन करके काम करने को वहाँ आ गया। इसके तीन मास के बाद ही पूज्य विनोबाजी का बिहार में पदार्पण हुआ। २७ महीने तक लगातार उनकी प्रेरणादायी पदयात्रा बिहार में चलती रही। इससे देश में तथा बिहार में जिस वातावरण का निर्माण हुआ, विनोबाजी के निकट सम्पर्क, उनके मार्गदर्शन आदि का जो सुयोग मिला, उन सबसे १९५२ में जिस विचार-से काँग्रेस की चुनाव-प्रधान सक्रिय राजनीति से अलग हुआ था, उसको अधिकाधिक पोषण मिला और मेरे व्रत में दृढ़ता आयी।

यहाँ यह उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि यद्यपि सर्वोदय-आश्रम की स्थापना करके सर्वोदय-समाज-निर्माण के लिए काम में अपनी शक्ति लगाने लगा हूँ, फिर भी मैं महान् संस्था काँग्रेस का भी सन् १९२१ से एक सैनिक के नाते कार्य करता रहा हूँ और उससे उसके एक सदस्य के नाते संबंध बना रहा है। फिर प्रादेशिक काँग्रेस-कमिटी के तत्कालीन सभापति स्वर्गीय श्रद्धेय पं० प्रजापति मिश्रजी ने भूदान-विभाग खोल कर उसका कार्य सम्हालने का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर सौंपा; या यों कहें कि मैं अपनी शक्ति जिस काम में लगाना चाहता था, उसे मैं काँग्रेस की ओर से करूँ, इसका सुयोग मुझे प्रदान किया गया।

इस प्रकार मैं अपने पुराने काँग्रेसी मित्रों का आशीर्वाद एवं सहयोग प्राप्त करते हुए पक्ष-निरपेक्ष कार्य करने की साधना करता रहा। अब सन् सत्तावन के कालड़ी-सर्वोदय-सम्मेलन में जो

www.vinoba.in

लक्ष्य निर्धारित किया गया है, उसकी सिद्धि के लिए आवश्यकता है कि पक्षातीत होकर भू-क्रान्ति को सफल करने के लिए काम किया जाय। इसलिए मैं कांग्रेस-संस्था एवं अपने कांग्रेसी मित्रों के प्रति पूर्ण आदर का भाव रखते हुए, मुझसे अपने कर्तव्य-पालन में जो कुछ त्रुटि हुई हो, उसके लिए क्षमा-प्रार्थना सहित कांग्रेस की सदस्यता से मुक्त हो रहा हूँ!

आशा है, जिस महान् उद्देश्य में सहायक होने के लिए मैं यह कदम उठा रहा हूँ, उसकी सिद्धि में कार्यकर्ता-मित्रों का प्रेमपूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

वर्तमान कोऑपरेटिव फार्मिंग के खतरे!

(जयप्रकाश नारायण)

भारत-सरकार कई हज़ार कोऑपरेटिव फार्म बनाने की योजना कर रही है। सबका आज इस कोऑपरेटिव फार्म पर बड़ा जोर है। उनका उद्देश्य यह है कि उत्पादन-वृद्धि हो। लेकिन मेरी अपनी राय है कि ये सारी योजनाएँ असफल होने वाली हैं! मैं बड़ी कठोर बात कह रहा हूँ! लेकिन इसे हमें भी समझ लेना है और उन्हें भी! मैं कोऑपरेटिव फार्मिंग के विरुद्ध नहीं हूँ, पर उनकी योजना सही भूमिका पर नहीं है! उनके सामने चीन की मिसाल है। इस देश में भी बहुत दिनों से उसका प्रचार चल रहा है। लेकिन बिहार में १०-१५ कोऑपरेटिव फार्म से अधिक नहीं बढ़ पाये, जब कि चीन में दो साल में लाखों हुए! अब इस काम में पूरी ताकत लगाने की बात सोची जा रही है। लेकिन न तो यहाँ डिक्टेटरशिप है और न यहाँ की हुकूमत के पुर्जे ही ठीक चल रहे हैं! रूस और चीन में क्रांति के बाद भूमि-सुधार हुए और बाद में कोऑपरेटिव फार्मिंग आया, जब कि यहाँ वह पहले ही आ रहा है! यहाँ एक गाँव में सौ एकड़ वाला है, पचास एकड़ वाला है, पाँच एकड़ वाला है और सात डिसीमल वाला भी है, तो कोई सिर्फ मजदूर ही हैं! यह है हमारे गाँव का नक्शा! अब इस पर आप बनाते हैं—कोऑपरेटिव फार्म! यानी जमीन के मालिक अपने-अपने टुकड़े सिर्फ काश्त के लिए एकत्र करें, उत्पादन बढ़ायें, खर्चा काट कर जमीन के अनुपात में पैदावार बाँट दी जाय और जिसके पास जमीन नहीं है, उसको मजदूरी भर दी जाय! यह हुआ यहाँ के कोऑपरेटिव फार्मिंग का नक्शा!! छोटे-छोटे टुकड़े एक करने से ही उत्पादन बढ़ता है, ऐसा विज्ञान का भी अनुभव नहीं है, खेती वालों का तो है ही नहीं! छोटे-छोटे टुकड़ों में सघन खेती हो, कुशल ढंग से हो, श्रम और पानी पूरा लगे; खाद, बीज, औजारादि अच्छे मिलें, तो पैदावार ज्यादा होगी! लेकिन ये ही साधन बड़े प्लॉट पर लगाये जायँ, तो अमरीका या रूस के लिए वे ठीक हो सकते हैं, भारत या चीन के लिए नहीं! यहाँ लोग ज्यादा हैं। जमीन बहुत कम है। वह भी छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटी हुई है। बेकारी भी बढ़ी हुई है। मशीनों से काम करते हैं, तो अनेक समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। इसलिए हमें उन्हें समझाना चाहिए कि बिना ग्रामदान के उत्पादन बढ़ने वाला नहीं है! किसी परिवार के पास एक हजार एकड़ हैं, लेकिन उस परिवार का एक भाई मुजफ्फरपुर में है, तो दूसरा पटना में रहता है और तीसरा दरभंगा में। जमीन भी कुछ इस गाँव में है, तो कुछ उस गाँव में! अब उन लोगों को क्या फिक्र है कि ज्यादा से ज्यादा उत्पादन हो? बड़ी-बड़ी जमीनों के ऐसे मालिक बहुत कम हैं, जिनकी जमीनें बड़े-बड़े प्लॉटों में ही हों और खुद वे अच्छी खेती भी कर रहे हों। गया जिले में राजासाहब मखदुमपुर का एक ऐसा उदाहरण है। लेकिन ऐसा सर्वत्र कहाँ है? क्या इस प्रथा को हम कायम रखेंगे कि खेत का मालिक तो शहरों में बैठा रहे और बँटईदारों और मजदूरों से कोऑपरेटिव आदि काम होते रहें? इधर मालिकों की ही शिकायत है कि मजदूर ठीक काम नहीं करता है और पैसा भी ज्यादा मांगता है! वह तो इसलिए ऐसा करता है कि उसे सिर्फ मजदूरी से मतलब है, न कि जमीन से! लेकिन ग्रामदान में वह बराबरी का हिस्सेदार हो जाता है और उसकी दृष्टि ही बदल जाती है। करीब ३० प्रतिशत भूमिहीन मजदूर भारत में हैं, जिनके पूरे श्रम समाज को भी नहीं मिल रहे हैं। पर वे ग्रामदान के कारण समाज को मिल जाते हैं। इस प्रकार क्रांति पहले होती है, भूमि-सुधार, उत्पादन-वृद्धि आदि का काम योजनापूर्वक फिर आगे बढ़ते हैं। इसके बिना जो योजनाएँ बनेंगी, वे सब निष्फल जाने वाली हैं। कोऑपरेटिव फार्म बन जायँ, तो भी आज की हालत में उत्साह आ नहीं सकता।

फिर बड़े-बड़े कोऑपरेटिव बनेंगे, तो बड़े-बड़े लोगों का उसमें अनायास हाथ भी रहेगा! अफसरों से और कोऑपरेटिव बैंक से भी उनका संबंध रहेगा। उस कोऑपरेटिव फार्म की व्यवस्था इस प्रकार होगी कि उससे बड़े लोगों को ही फायदा मिले, छोटे लोगों को नहीं। उस कोऑपरेटिव में सौ एकड़ वाले को उसी अनुपात में अनाज और आमदनी प्राप्त होगी। उसमें से किसीका बेटा पटना में पढ़ता है, तो किसीको हाथी खरीदना है, तो किसी को ब्याह-शादी के लिए कपड़ा चाहिए! इस तरह गाँव का अनाज बाहर बिकता चला जाता है, भले ही कोऑपरेटिव बने! तो ऐसी कोऑपरेटिव से क्या लाभ?

इधर समाजवादी आदि मान लेते हैं कि ग्रामदान हो गया, तो सामूहिक खेती भी साथ-साथ आ ही जाती है, क्योंकि उसीमें से यह बात निकल आती है! पर गाँव के निर्माण के समय एक ही बात, एक ही पैटर्न पर जोर देकर काम नहीं चल सकता! कई तरह के पैटर्न सामने आते हैं। जैसे एक यह कि हर परिवार को सदस्य-संख्या के अनुपात में गाँव की जमीन में से हिस्सा मिले और कुछ जमीन, १० या ५ फी सदी, सामूहिक खेती के लिए अलग रहे और उसकी आमदनी गाँवों के शिक्षा-सेवा आदि कार्यों में लगे। वह सामूहिक खेती सब लोग श्रमदान से करेंगे। गाँव को यह अधिकार रहेगा कि पाँच वर्ष के बाद फिर से परिवारों में बँटी हुई जमीन का आवश्यकता के अनुसार पुनर्वितरण करें। यह पैटर्न सब जगह लागू हो सकता है। दूसरा एक पैटर्न यह भी हो सकता है कि १०-५ परिवार ही मिल कर सामुदायिक खेती करें और बाकी व्यक्तिगत। यह मंगरौठ में चला था। तीसरा पैटर्न सामुदायिक खेतीवाला, जो वाई † में चल रहा है। उन्होंने सब स्वेच्छा से ही वह किया है और श्रम, औजार, जमीन जानवर आदि सब इकट्ठे रख कर 'वर्किङ्ग ग्रूप' बना लिये हैं, पैदावार की योजना भी बना ली है और गाँव-सभा सर्व-संमति से निश्चय करती है एवं गाँव-समिति संचालन! इस तरह वहाँ सामूहिक खेती स्वेच्छा से हो रही है।

पर मैं आपके सामने एक बात थोड़ी स्पष्ट कर दूँ कि 'वाई' में यह जो सामूहिक खेती हुई और वह जो कोऑपरेटिव खेती की बात सरकार द्वारा चलती है, उसमें क्या अंतर है? वाई में जमीन 'तुम्हारी-हमारी' नहीं है, वह 'एक' में ही मिला दी गयी है और सभी कुछ एकसाथ होता है। बंटवारा भी बराबरी के आधार पर होता है। कोऑपरेटिव फार्मिंग में ऐसी बात ही नहीं है। स्वामित्व-विसर्जन उसमें नहीं होता है और सौ एकड़ वाला सौ एकड़ के अनुपात में ही पैदावार का हिस्सा लेता है। इस तरह ग्रामदानी गांव में जो हुआ, वह क्रांति है और कोऑपरेटिव खेती तो एक छोटा-सा सुधार मात्र! खेती करने की वह एक व्यवस्था है—मीन्स ऑफ प्रॉडक्शन है, मीन्स ऑफ लीविंग नहीं, जीवन की पद्धति नहीं!

सामूहिक खेती के बारे में हमारा विरोध नहीं है। सिर्फ वह काम सहज और स्वेच्छापूर्वक होना चाहिए, बोझा या लादे जाने के स्वरूप में नहीं। दूसरे, १०-२० आदमी ही सामूहिक खेती करें, तो उनमें पारस्परिक परिचय बना रहता है और हिसाब-किताब रखने की ज्यादा झंझट भी नहीं होती है। पर जहाँ प्रबन्धक-जमात पैदा हो जाती है और कोई सेक्रेटरी तो कोई मैनेजर बनता है, वहाँ एक तन्त्र खड़ा हो जाता है और पारिवारिकता ही खतम हो जाती है। ऐसा अगर न हो और तभी सामूहिक खेती हो, तो वह अच्छी चीज है। पर मैं पसंद तो यह करूँगा कि पहले १० परिवार, १५ परिवार ही मिल कर सामूहिक ढंग से खेती करें। जहाँ काफी बड़ा गाँव हो, वहाँ सारी खेती सामूहिक रूप से करने से व्यवस्थापक-वर्ग से बचाव नहीं होगा और फिर आपस में झगड़े होंगे, शोषण का खतरा भी पैदा होगा। जो चीज मिटाने जायेंगे, दूसरे रूप में वही चीज आकर सिर पर बैठेगी। लेकिन किसी आदिवासी गाँव में या छोटे गाँव में सामुदायिक खेती हो सकती है, क्योंकि वहाँ उसके बिना चल नहीं सकता। वहाँ बहुत थोड़ी जमीन रहती है। बहुत छोटे-छोटे टुकड़े कर नहीं सकते और बार-बार के पुनर्वितरण से झंझटें भी खड़ी होती हैं। अतः ऐसी जगह सामूहिक खेती करने में हर्ज नहीं है।

खेद है कि आज छह साल से एक आंदोलन के कारण जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उससे सत्तावाले लाभ नहीं उठाना चाहते हैं और सत्ता की चाह रखने वाले भी उस तरफ ध्यान नहीं देना चाहते! वस्तुतः सभी पार्टियों को, खास कर काँग्रेस को ग्रामदान के काम में जुट जाना चाहिए। अगर यह नहीं होता है तो, अगला सारा काम रुक जाता है, तंत्र भी टूट जाता है और शासन भी टूट जा सकता है!! फिर कोऑपरेटिव फार्म की तो मामूली बात है! लेकिन दुख है कि इस दृष्टि से कोई नहीं देख रहा है! *

---

† देखें, 'भूदान-यज्ञ', ता० १९-७, पृष्ठ ११।

* बिहार-प्रां० सर्वोदय-सम्मेलन, पूसा रोड, ता० २९-६-'५७ के भाषण का एक अंश।

www.vinoba.in

सर्वोदय-दर्शन कैसे सजीव रह सकता है ?

(विनोबा)

सर्वोदय-आंदोलन को शुरू हुए करीब चालीस साल होते हैं। कभी सत्याग्रह, तो कभी असहयोग, कभी स्वदेशी, तो कभी स्वराज, ऐसे भिन्न-भिन्न नाम इस विचार को मिलते रहे हैं। अब इसको साम्ययोग और सर्वोदय नाम मिले हैं और भूदान-ग्रामदान इसीमें से निकले हैं।

सर्वोदय के आदि विचार का उगम-स्थान गांधीजी हैं। उधर टॉलस्टॉय, रस्किन थोरो; ये पश्चिम के नाम गांधीजी के साथ जुड़े, तो इधर गीता, वैष्णव धर्म, जैन धर्म आदि पौर्वात्य विचार जुड़े। इस तरह पाश्चात्य और पौरस्त्य विचारों का योग सर्वोदय में है। यह नये जमाने का नया जीवन-दर्शन है। मेरे जैसे अनेक लोग चालीस साल से इसका अध्ययन कर रहे हैं और तदनुसार जीने का प्रयत्न और जनता को समझाने की कोशिश भी कर रहे हैं। मैंने इसके साथ शांकर-विचार, उपनिषद, वेद आदि का अध्ययन भी जोड़ा। संयोग से काळड़ी के संमेळन में शांकर-विचार का एक चुना हुआ संग्रह भी, जो चार साल पूर्व तैयार किया था, प्रकाशित हुआ। सम्मेलन के प्रारंभ में और अंत में दो व्याख्यान मैंने शंकराचार्य पर दिये, जिनमें से आखिर के भाषण में मैंने सवाल उठाया था कि क्या कारण है कि शंकराचार्य की संस्था लगातार १२-१३ सौ साल से बराबर चली आ रही है? मैंने कहा था कि शांकर-विचार का अध्ययन, चिंतन आदि उसके साथ जुड़ा हुआ है।

कर्म की बलदायी शक्ति ज्ञान है। मिसाल के तौर पर ये हाथ-पैर ही देखिये जो कर्मवीर हैं! पर दिमाग में अगर ज्ञान न हो, तो ये कुछ नहीं कर सकते हैं! इसी तरह ज्ञान और कर्म का संबंध है। पर गांधी-विचार, जिसके लिए मैं सर्वोदय-दर्शन नाम अधिक उपयुक्त मानता हूँ और जैसे शांकर-विचार को अद्वैत विचार कहते हैं, वैसे गांधी-विचार सर्वोदय-विचार है, उसमें हमने अध्ययन-चिंतन की परंपरा नहीं चलायी। सर्वोदय-दर्शन में ग्रामोद्योग, खादी, नयी तालीम, हरिजन-सेवा, नारी-सेवा, प्रकाशन और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक पहलू आदि सब आ जाते हैं। जनसंपर्क का इतना बड़ा साधन शांकर-विचार को प्राप्त नहीं था, सिर्फ प्रकाशन का अवसर था। उत्तम हस्तलिखित ग्रंथ वे रखते थे। मठों में अध्ययन-चिंतन का इंतजाम था। उसके तथा योगक्षेम के कारण अल्पतम जन-संपर्क हो जाता होगा। पर आज तो हमारे पास जन-सम्पर्क के लिए व्यापक और विविध साधन उपलब्ध हैं। इतना बड़ा सेवा-कार्य शंकराचार्य, रामानुज के साथ नहीं था, क्योंकि इतनी सारी व्यावहारिक बातें और काम भी उस समय नहीं थे। **इस तरह हमारे सब लोग सेवा के इन कामों में तन्मयता से लगे तो हैं, लेकिन उसके साथ-साथ यदि अध्ययन-शीलता भी न रही, तो आपकी सेवा-संस्था आहिस्ते-आहिस्ते सरकार में लीन हो जायगी और उसमें से आदर्शवाद समाप्त हो जायगा।**

आलोचना करने के खयाल से नहीं, आत्मनिरीक्षण के लिए मैं हिंदी-प्रचार की एक मिसाल देता हूँ, क्योंकि मैं समझता हूँ कि जिनके बारे में कह रहा हूँ, वे मेरे ही रूप हैं! बापू ने सन् '२१ में हिंदी-प्रचार के लिए देवदासभाई को दक्षिण में भेजा। इस तरह स्वराज्य के पहले से हिंदी का काम शुरू हुआ और अन्य रचनात्मक कामों की तरह वह भी स्वराज्य-प्राप्ति का एक साधन बना। लेकिन आज उसकी क्या हालत है? वह संस्था सरकार में विलीन-सी हो गयी है। सरकार हिंदी चाहती है, इसलिए उससे मदद मिलती है। विद्यार्थी भी परीक्षा पास करते हैं और नौकरियाँ ढूँढ़ने में लग जाते हैं। सर्वोदय-विचार का प्रचार करने के बजाय या उसमें से निकले हुए भूदान-ग्रामदान में मदद करने के बजाय उत्तर-दक्षिण के कवियों की तुलना में ही सारी शक्ति खर्च कर रहे हैं। अपना सारा काम बंद करके भूदान में कूद पड़ने की बात तो हमने उन्हें कही नहीं थी! भाषा-प्रचार के ही साथ सर्वोदय-विचार के प्रचार की सिर्फ बात थी। विद्यालयों, पाठ्यपुस्तकों आदि के द्वारा सहज वे यह प्रचार कर सकते थे। उलटे, जहाँ हिंदी का विरोध हुआ, जैसे त्रिचनापल्ली में, वहाँ हमने हिंदी का प्रचार किया और हिंदी का महत्त्व भी बताया। इस तरह भूदान-ग्रामदान का काम करते हुए हिंदी का काफी काम हमने किया। पर यह करके हमने कोई उपकार नहीं किया, कर्तव्य ही किया; क्योंकि सर्वोदय-विचार-कार्य में हिंदी-प्रचार का काम भी आता है। पर इतिहास में यह बात याद रह जायगी कि हजारों कार्यकर्ता हिंदी-प्रचार वाले थे, लेकिन उन्होंने न भूदान में हिस्सा लिया, न सर्वोदय-विचार का अध्ययन ही किया। और, बिना अध्ययन किये वे प्रचार भी क्या करते?

कस्तूरबा-निधि की भी मिसाल लीजिये। दो हजार की लोक-संख्या से कम बस्ती वाले गाँवों में स्त्री-बच्चों की सेवा करने की गांधीजी की योजना थी। अब वह पैसा खतम होने जा रहा है। सरकार के जरिये जो काम हो रहा है, उसी ढंग का, सरकार की मदद से काम करने का क्रम उन्होंने अपनाया है और वह सरकार की शर्तों पर करना होता है! जिन बहनों को तालीम देनी है, उनको पहले मैट्रिक तक की पढ़ाई करनी होती है। आज की तालीम तो नयी तालीम के खिलाफ खड़ी है, तो क्या आज की तालीम ही उन्हें सिखाने में हम अपनी शक्ति खर्च करेंगे और उनमें से सेविकाएँ प्राप्त करने की आशा करेंगे? पर कस्तूरबा तो मैट्रिक भी नहीं हुई थीं, जिनके कि नाम पर यह स्मारक है! काम तो हमें ग्रामवासी स्त्रियों के आधार से, उन्हींके बीच करना है न? सेविकाएँ भी उन्हींमें से तैयार करनी हैं। फिर मैट्रिक-उत्तीर्ण छात्राएँ गाँव में कैसी जायेंगी? तनख्वाह आदि मिलने पर शायद जायें, पर क्या वे वहाँ लायक भी साबित होंगी? यह हुई कस्तूरबा-निधि की बात, लेकिन ऐसी ही हालत खादी-काम की भी होगी, यदि हम सावधान न रहें! हम स्पष्टवक्ता हैं। महाभारत में कहा है: "अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः"—अप्रिय बोलने वाला, परंतु हितकर बोलने वाला वक्ता और श्रोता दुर्लभ है।

हमारी जिंदगी अब बची भी कितनी है? भगवान् ही जाने! इसलिए जितनी जिंदगी बची है, उसमें जो सत्य दीखता है, वह बोल ही देना चाहिए। यह सत्य-निवेदन आप और हम, दोनों के लिए अच्छा है। मैं यह नहीं कहता कि सरकार से मदद लेना बुरी चीज है। वह अच्छी चीज है, लेकिन वह सर्वोदय नहीं है। ऐसी हालत में हमारे सारे काम सरकार में लीन हो जायेंगे और हम सत्ता के नौकर बन कररहेंगे!

ढेबरभाई ने जो बयान दिया है, वह आप लोगों ने पढ़ा होगा। ढेबरभाई कुछ कम सर्वोदयवादी नहीं हैं। वे अच्छे-से-अच्छे सर्वोदयवादी हैं। उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि काँग्रेस-सरकार सर्वोदय नहीं ला सकती। तो क्या इंग्लैंड या अमेरिका का पैटर्न यहाँ होगा? नहीं, वह भी नहीं बन सकता। तो दोनों पैटर्न गये। सर्वोदय हो सकता था, परंतु वह गांधीजी कर सकते थे। वह हम नहीं कर सकते। तो क्या बचा? सोशियलिस्ट पैटर्न। कम्युनिज्म और सोशियलिज्म, दोनों खड़े हैं, मैदान में। दोनों में कम्युनिज्म ठीक नहीं है और सर्वोदय हम कर नहीं सकते। मतलब यह है कि सर्वोदय-विचार 'आउट आफ क्वेश्चन' हो गया। ढेबरभाई का खुद का अपना यह विचार नहीं है, परंतु उन्होंने जो हालत दिल्ली में देखी होगी, उसके अनुसार बयान दिया। क्या ढेबरभाई जानते नहीं कि खादी की महिमा कितनी बढ़ी है? हजारों लोग उस काम में लगे हैं। वे यह सब जानते हैं, फिर भी वे कहते हैं कि सर्वोदय पैटर्न नहीं आ सकता!

तो सरकार खादी-ग्रामोद्योगों को मदद तो कर रही है, फिर भी सर्वोदय पैटर्न नहीं आ सकता, ऐसा वे लोग कहते हैं। दरअसल सरकार खादी आदि को जो मदद दे रही है, वह सिर्फ इसलिए कि 'डोल' (बेकारी-भत्ता) वह नहीं दे रही है!

इसलिए ये खादी-ग्रामोद्योग-हिंदी आदि के काम जिस ढंग से चल रहे हैं, उन्हें अगर आप सर्वोदय मानते हैं, तो सर्वोदय ही खतम है! इन सब कामों के पीछे जो सर्वोदय-विचार है, उसका कोई अध्ययन, चिंतन और प्रचार ही नहीं हो रहा है। कल्याण-राज्य में ऐसा ही होता है। बीच के ५-२५ साल के संक्रमण-काल के लिए सरकार ऐसी मदद करती है। उतने दिन हम जिन्दा रहें, तो इतना संतोष भी हो जायगा कि जिंदगी भर हमने खादी आदि का काम किया। लेकिन हमारे साथ ही वह काम भी खतम हो जाने वाला है! फिलहाल यंत्र और उद्योग नहीं बढ़ पाये, इसलिए इन कामों की पूछ है!

सर्वोदय के अलावा हम दूसरी बातें भी करना चाहेंगे। इसलिए हमने कोढ़ियों की भी सेवा शुरू की। उसके लिए जनता और सरकार से मदद भी मिलती है। वह भी सर्वोदय का काम है। उसमें धर्म-जाति-निरपेक्ष सेवा होती है।

तो, हमको सर्वोदय-तत्त्वज्ञान का अध्ययन करना चाहिए और खादी जैसे जन-संपर्क के काम से लाभ उठाना चाहिए। एक घंटे-दो-घंटे के अध्ययन से खादी-ग्रामोद्योग के उत्पादन में कमी नहीं आ सकती और उधर उस अध्ययन से जीवन-परिवर्तन होकर गाँव-गाँव में वह विचार फैल सकता है।

शंकराचार्य सारे देश में घूमे। वे जो भाषा जानते थे, उससे अपने प्रदेश में काम चला और अन्य प्रांतों में संस्कृत के जरिये उनका विद्वज्जनों से संपर्क हुआ। लेकिन वहाँ भी सब तो संस्कृत जानते नहीं थे! इसलिए वे आम जनसंपर्क कर ही नहीं सकते थे। तो वहाँ के विद्वान् जनों और नेताओं का वे विचार-परिवर्तन करते होंगे और वे लोग फिर जनता का परिवर्तन करते होंगे। गीता-भाष्य में उन्होंने लिखा है कि भगवान् ने अर्जुन को गीता इसलिए बतायी कि प्रत्यक्ष व्यक्ति को विशेष धर्म सिखाते हैं, तो उसके जरिये प्रचार होता है।

www.vinoba.in

"गुणाधिकैर्हि गृहीतोऽनुष्ठीयमानश्च धर्मः प्रचयं गमिष्यति ।"

उन्होंने यह अनुभव की बात कही। लेकिन आज हमें जितने भी साधन उपलब्ध हैं, उनका उपयोग करके अधिक-से-अधिक गहराई में हम जा सकते हैं, बशर्ते कि वह गहराई हमारी बुद्धि में भी हो। इसलिए हिंदी-प्रचार, खादी-प्रचार आदि ये जो साधन उपलब्ध हैं, उनके जरिये सर्वोदय-विचार फैलना चाहिए। 'खादी सस्ती है, खरीद लो', यह कहना सर्वोदय-प्रचार नहीं है। ऐसा तो 'लिप्टन की चाय' वाला भी कहता है! हमको तो कहना चाहिए कि 'खादी महँगी है, इसलिए खरीदो; क्योंकि यह विचार की बात है।' सन् '२१ की घटना है। वर्धा में सत्याग्रह-आश्रम की शाखा जमनालालजी के आग्रह से खुली और बापू ने मुझे वहाँ भेजा। जवाहरलालजी ने उस समय काँग्रेस के एक करोड़ सदस्य और 'तिलक-फंड' के लिए एक करोड़ रुपये प्राप्त करने की बात कही थी और हम गाँव-गाँव जाकर वह काम भी करते थे। पर ५-६ सदस्य ही बन पाते और दूसरे तो १००-२०० बना लेते थे! मैंने सोचा, वर्धा में हम नये हैं और प्रचार की कला हमें सधी नहीं, यही कारण होगा। हमने उन भाई के साथ ही दो-एक दिन जाना चाहा। उन्होंने कहा, "ना, आपका और हमारा तरीका अलग है। हम जीन-फैक्टरी में जाकर मालिक से पूछते हैं और वहाँ के सौ कर्मचारियों को सदस्य बना लेते हैं। पैसा वे दे ही देते हैं!" यह तरीका उनका था और हम तो एक-एक व्यक्ति को समझा कर सदस्य बनाते थे। उसको समझाये बिना हमारा समाधान ही नहीं होता था। बाकी प्रचारकों को इसकी कोई चिंता नहीं थी। गांधीजी के रहते यह हालत थी! तात्पर्य यह कि विचार-प्रचार अलग वस्तु है और बाह्य कार्य अलग। इसलिए हमारे सारे रचनात्मक कामों के जरिये सर्वोदय-विचार का प्रचार होना चाहिए और सतत अध्ययन के बिना नित नयी स्फूर्ति नहीं आती, न विरोधी विचारों का जवाब ही हम दे सकते हैं।

खद्दर का प्रचार भी विचार-प्रचार से ही होगा। साहित्य-प्रचार के लिए खादी-भंडारों में एक स्वतंत्र आदमी रखना चाहिए। पुस्तकों के कमीशन से उसका खर्च निकल सकता है। वह शख्स ग्राहकों से संपर्क साधेगा और उनको विचार समझा कर उन्हें सर्वोदय-मंडल में खींचेगा।*

* केरल-प्रकाशन-समिति के सामने किये प्रवचन का मुख्य अंश, काकूर, जि० कोलीकोड़, २१-७-'५७

नये समाज की नींव कैसे डाली जा सकेगी ?

(विनोबा)

मनुष्य का दो प्रकार का जीवन होता है और दोनों मिल कर पूर्णता होती है। एक होता है खानगी, कौटुंबिक, पारिवारिक जीवन। इसमें अपनी वासना काम करती है। कुल दुनिया में अपनी वासना के कारण ही मनुष्य कुटुंब में काम करता रहता है, परंतु इतने जीवन से मनुष्य का समाधान नहीं होता। कुटुंब-परिवार के प्रति वासना तो होती है, फिर भी समाधान नहीं होता, इसलिए फिर वह सामाजिक सेवा करता है। यह मनुष्य का दूसरा जीवन है। इससे उसका कुछ समाधान होता है। लेकिन सामाजिक सेवा के भी दो प्रकार हो गये हैं। एक प्रकार कुछ संकुचित है। उसमें अपनी जाति के लिए, अपने धर्म के लिए, अपनी पार्टी के लिए कुछ करने की भावना होती है। और, किसी भी प्रकार के भेद ध्यान में न रखते हुए कुल समाज की सेवा दूसरे प्रकार में आती है। जैसा-जैसा विज्ञान बढ़ रहा है, संकुचित सेवा के क्षेत्र खत्म होते जा रहे हैं। पुराने जमाने में विज्ञान बढ़ा हुआ नहीं था, इसलिए सेवा के क्षेत्र संकुचित थे। परंतु आज मनुष्य की दृष्टि विशाल और व्यापक बनी है और परस्पर के हितसंबंध संमिश्रित हो रहे हैं। आज मनुष्य जितनी संकुचित वृत्ति रखेगा, उतनी उसकी हानि होगी, क्योंकि संकुचित सामाजिक सेवा से कभी भय पैदा होता है, मत्सर बढ़ता है, झगड़े होते हैं। इस वास्ते संकुचित सेवा का विचार इस जमाने के अनुकूल नहीं है। अब तो जाति-धर्म-पक्ष-निरपक्ष जन-सेवा का प्रकार ही सच्ची सेवा का प्रकार है। याने अब मनुष्य के लिए दो प्रकार की ही सेवाएँ हैं : एक तो वासनामूलक कौटुंबिक सेवा और दूसरी, उदार बुद्धि से, बिना किसी भेद को न मानते हुए समाज की सेवा।

यह सामाजिक सेवा दो प्रकार से की जा सकती है। एक प्रकार है, सत्ता के जरिये सेवा का। सरकार के हाथ में सारी शक्ति देते हैं और उसके जरिये समाज की सेवा होती है। लोग अपने-अपने प्रतिनिधि सरकार में भेजते हैं और उनके द्वारा काम होता है। इस जमाने में लोगों ने यह तरीका मान्य किया है। परंतु इसमें सत्ता का उपयोग होता है, इस वास्ते यद्यपि यह प्रकार लोगों को मान्य है, फिर भी लोगों का उससे पूरा समाधान नहीं होता। जैसे, अभी समाज-सेवा के लिए पैसे की जरूरत है, तो सरकार ने टैक्स बिठाया। लोग भी, राजी हों या न हों, टैक्स देते हैं। समझते हैं, आखिर अपनी ही तो सरकार है। इस वास्ते थोड़ा ज्यादा भी देते हैं। इस तरह समाज की सेवा होती है। यह मान्य समाज-सेवा है; लेकिन उससे हृदय का समाधान नहीं होता, क्योंकि उसकी भी कुछ मर्यादाएँ होती हैं। सरकार के जरिये होने वाली सेवा हृदय-शुद्धि नहीं करेगी। वह बाहर की सेवा होगी। टैक्स बढ़ा दिया गया, तो मेरे हाथ से समाज-सेवा के लिए पहले जितना पैसा जाता था, उससे आज ज्यादा जाता है और मेरे हाथ से उस प्रकार ज्यादा समाज-सेवा होती है। इस तरह मैं बड़ा सेवक बन गया। लेकिन बना जबरदस्ती से! हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ। याने पहले मैं १००० रुपये टैक्स देता था, अब २००० देता हूँ। पर मेरी समाज-सेवा तो बढ़ी, परंतु दिल बड़ा नहीं बना, क्योंकि यह सेवा सरकार कराती है और मैं उसको संमति दे देता हूँ। झूठे हिसाब आदि से सरकारी टैक्स को नहीं टालता हूँ, तो वह मेरा अच्छा गुण है। परंतु यह सेवा 'करायी' जाती है। उससे चित्त की प्रसन्नता नहीं बढ़ी, कारुण्य की भी वृद्धि नहीं हुई। इससे मानव की उन्नति नहीं होगी। कहीं बाँध बनाये, सड़कें बनायीं, फैक्टरी खोल दी, तो उससे मानव की उन्नति नहीं होती। अच्छे मकान बनाना, प्रॉडक्शन बढ़ाना वगैरा अच्छे काम हैं, वे करने भी चाहिए, परंतु इतने से मानव की उन्नति नहीं होती है। अमेरिका इस दृष्टि से काफी समृद्ध देश है, फिर भी वहाँ हृदय का समाधान नहीं है। तो, केवल भौतिक उन्नति से मनुष्य के हृदय की उन्नति नहीं होती। इसलिए ऐसा सार्वजनिक कार्य करना पड़ता है, जो हृदय-परिवर्तन के जरिये होता है।

हृदय-परिवर्तन के जरिये किये गये सार्वजनिक कार्य को हम "लोकनीति" या जनशक्ति कहते हैं, राजनीति नहीं। हृदयपूर्वक सेवा, सहानुभूतिपूर्वक सेवा और कारुण्यपूर्ण सेवा; इस तरह मनुष्य की सेवा के तीन प्रकार हैं। उसमें एक है, वासनामूलक कुटुंब-सेवा। वह भी करनी होगी, परंतु उसमें बुरे तरीके से काम न लिया जाय, अप्रामाणिकता से कमाई न की जाय। इस तरह प्रामाणिकता से कुटुम्ब-सेवा कोई करता है, तो वह भी अच्छा कार्य करता है, ऐसा माना जायगा। दूसरे प्रकार में अपने-अपने प्रतिनिधि भेज कर जो सरकार बनती है, उसको वह सहानुभूति देता है, उसके जरिये काम कराता है और जो भी कार्य सरकार करेगी, उसमें वह सहानुभूति और सहयोग बताता है। उसकी माँगों को भी वेजा तरीके से वह टालता नहीं है। तो इस प्रकार वह भी सेवा का क्षेत्र है। तीसरा प्रकार है, कारुण्य से हृदयपरिवर्तन की प्रक्रिया का। इसमें लोक स्वयं जनसेवा करने लगेंगे। जो संकुचित जनसेवा थी; एक जाति की, एक धर्म की, एक पार्टी की उसको भी छोड़ देंगे। वह पुरानी बात हो गयी। आज वह हानिकारक है। इस प्रकार कार्य करना होगा।

इनको हम धर्म कहते हैं। प्रथम धर्म है, परिवार-धर्म। इसकी मर्यादा हमने बता दी कि सत्य की रक्षा की जायगी और न्याय्य तरीके से कमाई करनी होगी। किसी प्रकार का आलस न होगा, पड़ोसी की चिन्ता करेंगे। घरवाले स्वयं समानता से व्यवहार करते रहेंगे। इस तरह की कुटुंब-सेवा से मनुष्य का हृदय विकसित होता है, अन्यथा वह संकुचित बन जाता है। दूसरा धर्म है, राष्ट्र-धर्म। इससे सरकार के जरिये अनेक काम किये जायेंगे। उसके अच्छे काम में हम सहयोग देंगे और अगर उनका कुछ गलत काम हो, तो उसके विरोध में आवाज उठायेंगे। हमारा विरोध रहा, तो सरकार भी वैसे काम नहीं करेगी। लेकिन गलत कामों का विरोध भी प्रेम से और नम्रता से होगा, ऐसी शक्ति की आवश्यकता है। इंग्लैंड ने इजिप्त पर हमला किया, तो इंग्लैंड की कुल प्रजा की आवाज उसके खिलाफ उठी। यह है, राष्ट्र-धर्म की मिसाल। इस तरह उन्होंने बहुत अच्छी तरह सरकार की सेवा की है। सरकार के अच्छे कामों में सहयोग और गलत कामों का विरोध, यह है राष्ट्रधर्म। तीसरा धर्म है, कारुण्यधर्म या मानव-धर्म; या उसे भक्ति-धर्म भी कह सकते हैं। ऐसे तीन प्रकार के धर्मों को मनुष्य को अनुशीलन करना है।

त्रिविध धर्म

परिवार-धर्म वासनामूलक है, इस वास्ते वह धीरे-धीरे समाज में लीन हो जाना चाहिए। वह कायम का नहीं है। जैसे-जैसे वासना क्षीण होते जायगी, वैसे-वैसे

www.vinoba.in

वह समाज में लीन होता जायगा। इस तरह उसका क्षेत्र धीरे-धीरे कम करना होगा। कुछ उम्र तक वह धर्म रहेगा, परंतु आगे भोग-वासना नहीं रहेगी। बहुत कुछ अनुभव भी हासिल है, ज्ञान भी बढ़ा हुआ है, तो उस समय वानप्रस्थ बनना है। याने गृहकार्य का भार बच्चों पर सौंप दिया, पत्नी-पति के बीच भाई-बहन जैसा व्यवहार रखा और अधिक समय समाज-कार्य में दिया। घर का कारोबार बच्चे देख लेंगे। इस तरह परिवार-धर्म को समाज-धर्म में लीन करना हरेक का कर्तव्य है। इसी तरह राष्ट्र-धर्म, याने सरकार के अच्छे कामों में सहयोग और गलत कामों का विरोध, यह भी धीरे-धीरे विवेक से मानव-धर्म में या कारुण्य-धर्म में लीन करना होगा। मान लीजिये कि सख्ती से सरकार को टैक्स वसूल करना पड़े, इसके बदले लोगों ने ही प्रेम से उतनी रकम दे दी, तो कितना अद्‌भुत कार्य होगा! प्राइम मिनिस्टर-फन्ड में लोग प्रेम से, स्वखुशी से दान देते ही हैं न! उसी तरह प्राइम मिनिस्टर ने योजना प्रस्तुत कर दी कि २०० करोड़ की जरूरत है, तो लोग उसमें भी दान दे रहे हैं! पर आज इस प्रकार हम कल्पना नहीं कर सकते, न सरकार ही कभी दान मांगेगी। एक हाथ में टैक्स और दूसरे हाथ में दान, इस तरह सरकार दान नहीं मांग सकती। तब बाबा जैसा आदमी समझायेगा कि करुणा से प्रेरित होकर इतना काम करो। मान लीजिये कि लाखों लोग आगे आयें, करोड़ों रुपये का दान करें और समाज-सेवा करते रहें, तो सरकार की उतनी ही फिक्र कम होगी और उतने अंश में सरकारी सत्ता भी कम होगी। इस तरह सरकारी सत्ता क्षीण हो गयी, तो वह बहुत बड़ी बात है। सत्ता के बदले कारुण्य से इतनी कुल सेवा हो रही है, ऐसा दर्शन होगा, तो सब नाचने लगेंगे। अभी के इन्फ्ल्यूएन्जा में सब लोग उठ खड़े हो गये और मुफ्त सेवा देने लगे। बहुत सारा काम लोगों की तरफ से हुआ। देखते-देखते वह काम हो गया। सरकार को अधिक करना नहीं पड़ा। दूसरी ओर बिहार में जब बाढ़ आयी, तो सरकार मदद तो करती ही थी, परंतु लोगों ने अपनी तरफ से कुछ नहीं किया! पर ऐसे कामों के लिए तो लोगों को उठना चाहिए, स्वयं योजना और हिंमत करनी चाहिए, तभी तो जनशक्ति पैदा होगी और हरेक सच्चा स्वातन्त्र्य अनुभव करेगा। सरकार तो दोयम है। आज सारी सेवा उस पर सौंप दी, तो कारुण्यपूर्वक सेवा खत्म हो गयी। किसीको भी गरीबों की करुणा नहीं आती। व्यक्तिगत गुण-विकास का काम खतम ही हो गया! इस वास्ते जितना सरकार का काम कम होगा और कारुण्य से जितना ज्यादा-से-ज्यादा काम होगा, उतना करना अधिक अच्छा है।

इस तरह धर्म त्रिविध हैं : १. कुटुंब-धर्म, २. राष्ट्रधर्म, ३. कारुण्यधर्म। कुटुंब-धर्म धीरे-धीरे समाज में लीन होना चाहिए। फिर भी वह पूरा टूटेगा नहीं, क्योंकि बाप खतम होता है, तो बेटा चलाता है। बाप के बाद बेटा है ही। इस वास्ते कुटुंब-धर्म टूटेगा नहीं; वह चलता ही रहेगा, क्योंकि वह वासनामूलक है। परंतु 'व्यक्ति' का कुटुंब-धर्म टूटा। नदी समुद्र में लीन होती है, तो वह खतम नहीं होती, बहती ही रहती है। वैसा ही कुटुंब-धर्म समाज में लीन होगा, फिर भी बहता ही रहेगा। राष्ट्र-धर्म को भी कारुण्यधर्म मे लीन होना चाहिए। कारुण्यधर्म होगा, तो राष्ट्रधर्म खतम हो जायगा। यह हो सकता है, परंतु आज नहीं। लेकिन नमूना तो इस प्रकार का हो सकता है। तो, अब दो ही धर्म रहे : एक कारुण्यधर्म का महान् समुद्र और उसको मिलने वाली कुटुंबधर्म की बहती नदी। यह होगा, तभी हमें जैसा चाहिए, वैसा समाज बनेगा।

महाभारत का प्रसंग है : धर्म और भीम चर्चा कर रहे थे। उतने में एक शख्स वहाँ न्याय मांगने आया। भीम ने कहा, "जरा ठहर जा, हम चर्चा कर रहे हैं। चर्चा खतम होने के बाद तुम्हारा काम होगा। थोड़ी देर के बाद आ।" धर्म ने भीम का हाथ पकड़ा और कहने लगे, "क्या न्याय देने का काम बाद में हो सकता है? वह तो त्वरित देना चाहिए। चर्चा बाद में भी हो सकती है।" "धर्मस्य त्वरिता गतिः"—जो शीघ्र होता है, वही धर्म है। आज का धर्म आज ही होगा। जो कल होगा वह आज का धर्म नहीं। क्या अभी का श्वास हम कल लेंगे? आज का आज और कल का कल! श्वासोच्छ्वास में उधारी हो ही नहीं सकती। तो धर्म श्वासोच्छ्वास के समान है। वैसे ही पैसा भी तुरंत खर्च करना होगा। शामजीभाई कह रहे थे कि रकम थोड़ी है। लेकिन हम ऐसी नजर से नहीं देखते। आज थोड़ी है, परंतु अगर हृदय है, तो वह बढ़ेगी। यह एक छोटा-सा फल है। उसका स्वाद देखेंगे, तो लोग स्वयं आकर दान देंगे। इस वास्ते हृदय-भावना को खूब बढ़ाना है। यह कब तक करना है? कुल सरकार को विलीन करना है, यह मत भूलो; उसके बिना मुझे समाधान नहीं। मुझे पूछते हैं कि यह कब खतम होगा? मैं कहता हूँ, ये जो नवग्रह हैं, वे इकट्ठे हो जायँ तो सरकार की शक्ति क्षीण होगी।

यह कार्य निगेटिव नहीं है। सरकार को खतम करना याने सरकार की आवश्यकता न रहे, इतना कारुण्य-विस्तार होना चाहिए। इसलिए कुछ लोग हमको समझते हैं कि यह अराजकवादी है।

लेकिन हम कहना चाहते हैं कि हम "वादी" नहीं हैं, "कारी" हैं। हम करना चाहते हैं। हम कारुण्य-विस्तार करना चाहते हैं, ताकि सारी सरकारें उसमें डूब जायँ!

(कोळीकोड़ के व्यापारियों के सामने किये प्रवचन से, १२-७-'५७)

हरिजन-सेवा की दृष्टि

(विनोबा)

आजकल जिस ढंग से हरिजन-कार्य चल रहा है, उससे हमको समाधान नहीं है। यह वही पुराना तरीका है, जो ३० साल पहले शुरू हुआ था। पर उसी तरीके से आज भी काम नहीं बनेगा। अब समय आया है कि हरिजन आदि भेदों को हम खतम ही कर दें। हरिजन-परिजन भेद बिलकुल नहीं, सब एक ही हैं। हमको मनुष्य मात्र की सेवा करनी है और जो अधिक दुःखी है, उसकी पहले सेवा करनी है। आपत्ति सब पर आती है। जो मनुष्य आपत्ति में है, उसकी सेवा करना हमारा धर्म है। परन्तु किसीको 'हरिजन' नाम देकर उनकी सेवा करने की मेरी तो इच्छा नहीं है हमने भू-दान में नियम रखा है कि आज जो हरिजन कहलाये गये हैं, वे विशेष दुःखी हैं, यह ध्यान में रख कर उन्हें, पहले कुछ जमीन मिले फिर शेष भू-हीनों को। लेकिन सेवा करनी है, तो सिर्फ हरिजनों की सेवा करने से काम पूरा नहीं होगा, क्योंकि दूसरे भी ऐसे हैं, जो आपत्ति में पड़े हैं। शरणार्थी, टी० बी० के बीमार आदि विविध प्रकार से दुःखी लोग हैं। उनकी भी सेवा हमको करनी है, ऐसा हम निश्चय करें, बाकी सब भेद-भाव समाज में डुबो दें, तब सच्ची सेवा होगी। किसी जाति का लेबल याद में रख कर सेवा की जायेगी, तो वह चलने वाली नहीं है।

गाँव में ब्राह्मण हैं, दूसरे लोग हैं, हरिजन भी हैं। हम कहते हैं, हम सबकी सार्वजनिक सेवा करेंगे। याने हरिजन को अलग रख कर उनकी सेवा नहीं करेंगे। आज कुल समाज से हरिजनों को अलग रख कर सेवा करते हैं। जैसे घोड़े को बाहर अलग तबेले में बाँध कर उसकी सेवा की जाती है, वैसे ही हम हरिजनों की सेवा करते हैं! और जैसे घोड़े का स्थान घर में नहीं, वैसे हरिजनों को अपने घर में कोई स्थान नहीं देता। अलग रख कर वहाँ वे सेवा करेंगे! एक बात यह भी है कि हरिजन स्वयं चाहते हैं कि उनको अलग रखा जाय और उनके लिए कुछ स्पेशल योजना बने। पर वास्तव में मानव-समुद्र में सारे भेद-भाव मिटने चाहिए। किसीकी क्या जाति है, यह पूछना ही नहीं चाहिए। घोड़ा है या बैल, क्या यह देख कर मालूम नहीं होता? तो जो देखने से मालूम होगा, वह जाति है! जाति तो जन्म से होती है न? चेहरा देख कर नहीं पहचानते हो, तो वह जाति ही नहीं है। इतने सारे लोग मेरे सामने बैठे हैं। मैं समझता हूँ, ये मानव हैं। हाँ, यह है कि किसीका रंग काला है, कोई कमजोर है, कोई पुष्ट शरीर का है, कोई चश्मा लगाता है, किसीको बिना चश्मे से भी दीखता है, परन्तु ये मानव हैं, यह मुझे साफ दीख रहा है। लेकिन कौन ब्राह्मण है, कौन क्षत्रिय है, यह नहीं दीख रहा है। वह दीख भी नहीं पड़ेगा। मरने के बाद ही वह मालूम पड़ेगा कि उसमें कौन गुण थे। अगर वह ज्ञानी था, तो वह ब्राह्मण था। अगर सारी जिंदगी में दरिद्रों की सेवा में मर मिटा हो, तो वह क्षत्रिय के दिमाग का था। इस तरह मरने के बाद पता लगेगा, तब तक नहीं।

गुणों की पहचान मरने के बाद ही होती है। तब तक उसका कोई मान नहीं और अपमान भी नहीं। लोग हमको मानपत्र देते हैं। हम कहते हैं, हमको पहले मरने तो दो, उसके बाद तय करो, जो भी करना है। अभी तो हम साधु पुरुष दीखते हैं, लेकिन एकदम बदमाशी शुरू करेंगे, तो क्या होगा? इसलिए हमारा जीवन तो खतम होने दो, फिर तय करो! मरने के बाद ही मालूम होगा कि यह ढोंगी है या सज्जन है! तब तक मान, अपमान कुछ नहीं। सब पर प्रेम करता है, सबको प्रेम से देखता है, परन्तु उसमें दोष भी हो सकते हैं। मान-अपमान के लिए गुणदोष जानना जरूरी है। इसीलिए हम कहते हैं कि किसीको मरने दो, तब पूरा न्याय होगा। अगर उसमें ज्ञान होगा, वह तप करता होगा, तो "ब्राह्मण" कहा जायेगा। उसमें शौर्य होगा, तो वह "क्षत्रिय" कहा जायेगा। अगर सेवा-वृत्ति होगी, तो "शूद्र।" घर का कारबार देखता होगा, सबके लिए संग्रह करता होगा, तो वह "वैश्य" होगा। पर इसका फैसला मरने के बाद ही होगा। तब तक किसी जाति का नाम हमको नहीं लेना है। समाज में सबके सब मानव हैं। इसलिए यह हरिजन-परिजन नाम से सेवा हमको पसंद नहीं है।

(हरिजनों की सभा में किये भाषण से, कोळीकोड़, केरल, १३-७-'५७)

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

९ अगस्त सन् १९५७

लोकनागरी लिपि *

सर्वोदय की शक्ती में बाधक प्रवृत्तीयाँ !

(वीनोबा)

आज हर मनुष्य का चींतन, बुद्धी और शक्ती अपने और अपने घर वालों के स्वार्थ-साधन में ही चौबीसों घंटे लगी रहती हैं। फीर भी वह सुखी नहीं हैं। उसके जीवन में दुःख ही दुःख भरा हुआ हैं। ओसका कारण यह हैं की वह अेक मूलभूत गलती कर रहा हैं, याने वह अपना ही अपना देखता हैं, दूसरों का नहीं, जब की अपना अधीक-से-अधीक चींतन हमको समाज के लीअे करना चाहीअे। ओस तरह की पारस्परीक मदद से जनशक्ती का नीर्माण होगा। दुर्भाग्यसे आज 'जन' हैं, पर 'शक्ती' नहीं हैं ! ओसलीअे हम आज अपना भरोसा छोड़ चुके हैं और ज्यादा-से-ज्यादा भरोसा सरकार का करते हैं, जैसे की वह अीश्वर ही हैं ! लेकीन जहां हम अपना स्वार्थ देखना छोड़ देते हैं, वहां अपनी शक्ती तो बढ़ती ही हैं, समाज का भी भला होता हैं। नदी समुद्र में जाती हैं। समुद्र से बादल बनते हैं। अुनसे बारीश होती हैं। ओस तरह अेक-दूसरे को देने का क्रम जारी रहता हैं, तो अुससे अुनका और दूसरों का भी हीत ही होता हैं। वे परस्पर अलग रहेंगे, तो हीत का संवर्धन हो नहीं सकता, न सृष्टी का ही काम चल सकता हैं। समाज में परस्पर को अलग रखने का काम आज धर्म, जाती और अपना-अपना स्वार्थ कर रहे हैं। भगवान् का नाम लेने के लीअे भी सब आस्तीक लोग अीकट्ठे नहीं हो सकते और परस्पर के धर्म के वीरुद्ध ही झगड़ते हैं। धर्म याने रुची के अनुसार अुपासना का प्रकार ही हैं, जैसे की घर-घर में भोजन अपनी रुची के अनुसार होता हैं। पर वही धर्म आज जनशक्ती को तोड़ने का कारण बन रहा हैं और अुपासना के शुभ भेद ही अशुभ बन गये हैं। जातीभेद भी समाज के टुकड़े कर रहा हैं। सभी अेक जगह रहते हैं, सबको भूख-प्यास लगती हैं, फीर भी अलग जाती-भेद मान करके समाज के टुकड़े क्यों कीये जाते हैं ? अब अेक पक्षभेद और नीकला हैं, जो सब जगह भेदासुर नीर्माण कर रहा हैं और वह भी समाज के टुकड़े-टुकड़े कर डाल रहा हैं।

ओस तरह स्वार्थ, धर्म, जाती और पक्ष समाज के टुकड़े-टुकड़े बना कर अुसकी शक्ती क्षीण कर रहे हैं। यह सारी शक्ती सर्वोदय को फीर से बटोरनी हैं। सर्वोदय के सागर में हमको ये सारे भेद और स्वार्थ डुबो देने हैं और समाज की अपार शक्ती, जो सर्वोदय की शक्ती हैं, खड़ी करनी हैं।

(तामरशेरी, कोलीकोड़, १८-७-'५७)

* लिपि-संकेत : ि = ी; ी = ै, ख = क्ष, संयुक्ताक्षर हलंत-चिह्न से।

सर्वोदय की दृष्टि :

शिष्ट-मंडल की रिपोर्ट और सहकारी खेती

श्री. रा. कृ. पाटीलजी की अध्यक्षता में भारत से एक शिष्ट-मंडल चीन-जापान की कृषि-व्यवस्था की जाँच करने के लिए पिछले दिनों वहाँ गया था। शिष्ट-मंडल ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है। दो सदस्यों ने मतभेद भी प्रकट किया है। दोनों पक्षों की सिफारिशों का सार इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है।

शिष्ट-मंडल को इस बात के लिए धन्यवाद देने चाहिए कि कोऑपरेटिव फार्मिंग (सहकारी खेती) में जोर-जबर्दस्ती नहीं होनी चाहिए, यह उसने स्पष्ट रूप से कह दिया है। वस्तुतः कोऑपरेटिव फार्मिंग लाभदायक है या नहीं, इसके संबंध में जो भी मतभेद हों, कोऑपरेटिव फार्मिंग जबर्दस्ती या अनिच्छा से कहीं पनप नहीं सकती, इसके संबंध में शायद अब मतभेद नहीं हैं ! यूगोस्लाविया जैसे साम्यवादी देश में भी यह जोर-जबर्दस्ती सफल नहीं हो सकी, इसका ऐलान न सिर्फ बाहर के लोगों ने, बल्कि वहाँ के नेताओं ने भी किया है, जैसे कि

> श्री मार्शल टीटो ने पिछले दिनों कहा था : "जबरदस्ती से बनायी गयी सहकारी संस्थाओं से हम समाजवाद के लक्ष्य की ओर अग्रसर नहीं हो सके। जब हमने इसकी कोशिश की, तो हमें शीघ्र ही पता चल गया कि यह गलत रास्ता है, क्योंकि हमने सिर्फ दूसरों की नकल की थी !
>
> "पुरानी परिपाटियों से हमें काफी क्षति उठानी पड़ी।" (बेलग्रेड् ५-६-'५७)

चीन में भूमि का प्रश्न हल करने में जोर-जबर्दस्ती हुई है, इसे शिष्ट-मंडल ने स्वीकार करते हुए भी यही कहा है कि कोऑपरेटिव फार्मिंग को किसानों का हार्दिक सहकार प्राप्त है। रूस आदि राष्ट्रों में कलेक्टिव अर्थात् सामूहिक खेती जबर्दस्ती करा ली गयी, तो भी उसके परिणाम अच्छे नहीं आये, यह जाहिर ही है। इसलिए जोर-जबर्दस्ती-दबाव का मामला कोऑपरेटिव खेती में चल नहीं सकता और हिंदुस्तान में तो बिलकुल नहीं चल सकता, यह स्पष्ट है। साथ-साथ यह भी स्वीकार करना होगा कि जहाँ मूल में जोर-जबर्दस्ती हो, यानी भूमि-क्रांति में भी हिंसा आदि का स्वीकार किया जाय, तो उसके भी बुरे परिणाम देर-अबेर हुए बिना नहीं रह सकते। तज्जन्य विकृतियाँ किसी-न-किसी रूप में फिर नयी समस्याएँ ही खड़ी कर देती हैं, भले ही बाद में जोर-जबर्दस्ती न की जाय !

दूसरी बात यह है कि हमारे यहाँ जमींदारी का विसर्जन भले ही हुआ हो, लेकिन ज़मीन के कानूनी न्याय्य वितरण से हम अभी कोसों दूर हैं। सीलिंग से भूमि-समस्या का पूरा निराकरण नहीं हो पायेगा, यह भी स्पष्ट है, परंतु सीलिंग तक के अमली कदम भी आज नहीं उठ पा रहे हैं ! यह तो आज कानूनी मार्ग की स्थिति है ! और, भूमि-वितरण न्याय्य रूप से जब तक न हो, तब तक यहाँ खेती की मूलभूत रचना में भी कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं चल सकता, यह भी स्पष्ट है। चीन में या अन्यत्र जहाँ भी ये परिवर्तन चले, वहाँ भूमि का प्रश्न हल करने के बाद वे चले ! इसलिए कोऑपरेटिव फार्मिंग जैसा बड़ा परिवर्तन अपने वास्तविक अर्थों में तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि यहाँ की भूमि-समस्या संतोषकारी रूप में हल नहीं हो जाती !

भूदान-यज्ञ-आंदोलन जब शुरू हुआ था, ३-४ दिनों तक प्राप्त दान-पत्रों में यह लिखाया जाता रहा कि "इस जमीन की हम सहकारी खेती करेंगे।" बाद में यह लिखाया जाना विनोबाजी ने बंद करा दिया !

ध्यान रखने की बात है कि जितनी जमीन पर से निजी स्वामित्व चला गया, उतनी जमीन की भी सहकारी खेती उस समय असामयिक समझी गयी, क्योंकि जो अज्ञान, अव्यवस्था, शोषण की पद्धति आज चल रही है, उसे देखते हुए ऐसी कोऑपरेटिव खेती एक नये व्यवस्थापक-वर्ग के हाथों पड़ कर किसान का शोषण पूर्ववत् करते रहेगी, ऐसी संभावना प्रतीत हुई। यह परिस्थिति आज बहुत बदल गयी है, ऐसा नहीं लगता। दूसरी ओर, किसानों में निजी खेती के प्रति ममत्व आज भी उसी तरह कायम है। ऐसी हालत में "व्यक्तिगत खेती" की उनकी भावना को धक्का न लगाते हुए भूमि-समस्या को सही रूप से हल करना और फिर छोटे टुकड़ों को मिटा कर सहकारी खेती करने की ओर भी उन्हें प्रवृत्त करना छोटी समस्या नहीं है। भूदान-यज्ञ ने इसमें से एक सफल राह निकाली, क्योंकि प्राप्त भूमि का वितरण भूदान में उसी ढंग से होता रहा है !

और अब ग्रामदान ने तो सारी भूमिका ही बदल दी है। भूदान में स्वामित्व-विसर्जन पूरा नहीं था। पर इसमें स्वामित्व-विसर्जन पूरा हो जाने से अनेक बाधाएँ अपने आप दूर हो जाती हैं। खेती वैयक्तिक करें, सामूहिक करें या सहकारी

www.vinoba.in

रूप से करें, सबके लिए यह अनुकूलता ही पैदा कर देता है और भूमिवितरण-समस्या हल हो जाती है। सबसे बड़ी बात, सहकारी खेती के लिए जो मनोभूमिका चाहिए, वह भी बुनियादी रूप से इसमें प्राप्त हो जाती है, क्योंकि एक परिवार-भावना ग्रामदान के मूल में काम करती है। जहाँ बुनियाद में सहजीवन की ऐसी प्रेरणा तैयार हो जाती है, वहाँ आगे के कार्यों में सहयोग सहज चीज हो सकती है।

उत्पादन की दृष्टि से सहकारी खेती लाभप्रद है या टुकड़ों-टुकड़ों में, इस बहस में हम अभी यहाँ नहीं जायेंगे। इस संबंध में दोनों तरफ अनुभव भी हैं, तर्क भी हैं। पर यह देखा गया है कि किसानों को पानी-बीज आदि की पूरी सुविधा प्राप्त हो, तो छोटी खेती भी लाभदायी होती है, बशर्ते कि समुचित बँटवारा हो गया हो। पर यह तो स्पष्ट है कि भूमि-क्रांति के बिना क्या छोटी खेती और क्या सहकारी खेती, दोनों ही कामयाब नहीं हो सकती और ठीक यहीं पर सबका दुर्लक्ष्य हो जाता है। पर ग्रामदान इस भूमिक्रांति का एक ऐसा कारगर साधन है, जो किसी तरह की बुरी प्रतिक्रियाओं को तो खैर, जन्म देता ही नहीं, उलटे अनेक अनुकूलताएँ ही बना देता है। काश्त कैसी हो, इस संबंध में दर असल भूदान का आज कोई खास आग्रह भी नहीं है! ग्रामदान प्राप्त किये जायँ, यही उसका आग्रह है। बाद में, जहाँ जैसी अनुकूलता हो, सहकारी या निजी खेती का तरीका अमल में लाया जा सकता है। सहकारी खेती भी उत्तम चीज है और उसे प्रोत्साहित करना चाहिए, इस संबंध में ग्रामदान का कोई विरोध नहीं है, बल्कि वह इसे सहयोगी जीवन की दृष्टि से भी समर्थनीय मानता है। परंतु इसका अभिक्रम गाँववालों की ओर से ही होना चाहिए। हम उन्हें इस संबंध में विचार, अनुभव तथा सहायता अवश्य प्रदान करें। तब तक अन्य क्षेत्रों में भी सहकार हो सकता है।

परंतु सहकारी खेती से नये व्यवस्थापक-वर्ग की स्थापना कतई न हो और उसके द्वारा शोषण के नये प्रकार भी पैदा न हों, इसकी सावधानी रखना अत्यावश्यक है। अगर इस ओर जरा भी दुर्लक्ष्य हुआ, तो सहकारी खेती की भावना ही टूटे बगैर नहीं रहेगी, भले ही भूमि-वितरण न्याय्य रूप से हो जाय! खेद है, जहाँ जोर-जबर्दस्ती की ओर हमारा ध्यान जाता है, इस 'मैनेजियरल वर्ग' की बुराइयों की ओर उतना नहीं। आज जिस 'कोऑपरेटिव खेती'की बात सरकारी स्तर पर होती है, उसमें जोर जबर्दस्ती भले ही न हो, भूमि के न्याय्य वितरण की बात का आग्रह नहीं है, न उपर्युक्त ढंग से अभिक्रम उत्पन्न करने का प्रयत्न ही। "मैनेजरियल वर्ग" से बचाव करने का भी कोई स्पष्ट दर्शन नहीं है। सहकारी खेती के उतने ही हिस्सेदारों में तो समानता रखी जाय, इतना भी आग्रह शायद नहीं है!

दरअसल सहकारी खेती यदि व्यापक पैमाने पर सफल करनी है, तो वह ऊपर-ऊपर के प्रयत्नों से सफल नहीं हो सकती। दूसरी ओर, सहकारी खेती के लिए सर्वथा अनुकूल भूमिका ग्रामदान-आंदोलन से बन जाती है। ऐसे मजबूत पाये पर खड़ी सहकारी खेती, क्या ग्रामशक्ति के उपार्जन का भी एक सहज उपादान नहीं बन सकती?

काशी, ३०-७-'५७ —लक्ष्मीनारायण भारतीय

कहीं प्रतिक्रांति में हम न फँस जायँ!

(सिद्धराज ढड्ढा)

ग्रामदान के वातावरण और ग्रामदान के बाद गाँव की नयी रचना के बारे में हमने सांगोपांग विचार यहाँ किया, पर इस संपूर्ण अहिंसक क्रांति का पुरस्कर्ता और वाहन तो गाँव का सेवक या नयी तालीम का शिक्षक ही होगा! अतः हमारी क्रान्ति के जो नये मूल्य हैं, उनके प्रकाश में वह सेवक कहाँ है, इस पर भी हमें गहराई से विचार करना चाहिए। वास्तव में जब तक एक सेवक और दूसरा सेव्य, ऐसे दो वर्ग रहेंगे, तब तक शोषण की प्रक्रिया बन्द नहीं हो सकती। समाज में से शोषण का अन्त और प्रेममूलक समाज-रचना करनी हो, तो आज उत्पादक और अनुत्पादक, ऐसे दो वर्गों में जो समाज बँटा हुआ है, उसकी एवज़ में उत्पादकों का एक समरस समाज ही बनाना होगा। अतः सेवक को भी उत्पादक की भूमिका पर आना होगा, ताकि सेव्य अलग और सेवक अलग, ऐसा भेद समाज में न रहे। बुद्धिवाले लोग नाना प्रकार से श्रमिक-वर्ग का शोषण करते रहे हैं। अलग सेवक-वर्ग का अस्तित्व भी इस प्रकार के शोषण का एक जरिया बना रहेगा। इसीलिए आदरणीय श्री शंकररावजी ने सेवकत्व के विसर्जन की भी बात कही है।

दुनिया के इतिहास में अब तक यही हुआ है कि क्रांति करने वाला खुद क्रांति के नये मूल्यों से अलग-सा रहा। इसीमें से प्रतिक्रांति का जन्म होता है। यदि हम श्रमनिष्ठ, समरस, उत्पादक समाज बनाना चाहते हैं, जन-जन तक प्रेममूलक क्रांति का सन्देश पहुँचाना चाहते हैं, तो हमें जनता के साथ तादात्म्य सिद्ध करना होगा। हममें से बहुत से लोगों ने अनेक कष्ट सहन किये हैं। बड़े-बड़े त्याग भी किये हैं। अपना जीवन-स्तर भी पहले की अपेक्षा बहुत नीचा किया है। पर यह सब गुणात्मक (क्वालिटेटिव) परिवर्तन नहीं हुआ है, संख्यापरक (क्वाँटिटेटिव) परिवर्तन ही हुआ है। पहले ज्यादा भोग करते थे, अब कम करते हैं, पर जो हमारा सेव्य है-उत्पादक वर्ग-किसान और मजदूर, उसके और हमारे बीच आर्थिक दृष्टि से एक जो मौलिक अन्तर पहले था, वह इतने त्याग के बाद भी बाकी रहा है। वह अन्तर यह है कि हम कितना भी कम निर्वाह-व्यय लेते हों, हमारे जीवन में एक प्रकार की आर्थिक सुरक्षा (इकॉनॉमिक सिक्युरिटी) है, जो आज उत्पादक-वर्ग को प्राप्त नहीं है। किसान पूरा श्रम करता है, फिर भी अन्त में फसल कैसी और कितनी उतरेगी, यह निश्चित नहीं है। उसमें से शोषण कितना हो जायगा, यह बात तो अलग ही है। शहरों में मजदूरी करने वाले चंद संगठित मजदूरों के अलावा देश के ८० फीसदी मजदूरों को रोज मजदूरी मिलने का भरोसा भी नहीं है। आज मजदूरी मिली, तो घर में चूल्हा जला और बालबच्चों को रोटी मिली। कल मजदूरी नहीं मिली, तो एकादशी हुई! हम हजार-पाँच सौ न लेकर सेवाकार्य के बदले में साठ-सौ रुपया ही माहवार लेते हैं, यह बहुत त्याग हैं, इसमें शक नहीं है। परन्तु जो लेते हैं, उतनी हद तक तो आर्थिक सुरक्षा हमें प्राप्त ही है! जिस तरह किसान-मज़दूर का जीवन आज अनिश्चित है, उस तरह हमारा नहीं है, न उसकी तरह उत्पादक शरीर-श्रम से हमारी आजीविका जुड़ी हुई है।

यह अन्तर मौलिक है और इसीके कारण आज हमारे और आम जनता याने उत्पादक-वर्ग के बीच सच्चे मानी में सह-अनुभूति (सहानुभूति) भी स्थापित नहीं हो पाती, तादात्म्य की बात तो दूर रही। एक दीवार उनके और हमारे बीच में खड़ी है, जो हमें समरस होने से रोकती है। देश के करोड़ों लोगों की तरह जब तक सेवक के जीवन में श्रम एक सहज अंग नहीं बन जाता, तब तक सर्वथा शोषण-मुक्त समाज की कल्पना करना व्यर्थ है। सेवक और सेव्य का भेद मिटाने के लिए हमें भी मेहनत की भूमिका पर आना होगा। जैसा पूज्य बापू ने बताया था, समाज में हर व्यक्ति चार घंटे शरीरश्रम करें और चार घंटे समाज-सेवा या बौद्धिक कार्य और इस चार घंटे के उत्पादन से शरीर-यात्रा चले। इस आदर्श तक हमें पहुँचना है।

हमारी क्रांति में दूसरी मुख्य बात अपरिग्रह की है। अपरिग्रह को हम गलत न समझें। अपरिग्रह का मतलब अभाव से नहीं है। अपरिग्रह का एक पहलू है, व्यक्तिगत मालकियत का विसर्जन और दूसरा पहलू है, भोगपरायण जीवन से संयमी जीवन। यह निगेटिव और पॉज़िटिव, निषेधात्मक और स्वीकारात्मक, दोनों पहलू मिल कर अपरिग्रह का विचार पूर्ण होता है। समाज समृद्ध हो, पर व्यक्ति के पास संग्रह न हों। समृद्धि और विलास में अन्तर है, यह भी समझ लेना चाहिए। इन सब बातों का विवेक और तारतम्य रख कर जो चीज बनेगी, वह अपरिग्रही समाज होगा। इस प्रकार के अपरिग्रह के बिना न तो जीवन उन्नत होगा, न शोषण करने की वृत्ति खतम होगी। अतः व्यक्तिगत मालकियत के विसर्जन और संयमी जीवन, इन दोनों कसौटियों पर शिक्षक या सेवक को अपना जीवन निरंतर कसते रहना चाहिए।

हमारा अन्तिम ध्येय अहिंसक या प्रेममूलक समाज बनाने का है। अतः कार्यकर्ता के जीवन में उत्तरोत्तर प्रेम का दर्शन होना चाहिए। इसके लिए अध्यात्म को या 'अध्यात्म' शब्द से कुछ एतराज हो, तो मानवता की भूमिका आवश्यक है। इसकी साधना भी सेवक को निरंतर करनी है।

इस प्रकार नयी तालीम का शिक्षक, जो गाँव का सेवक बन कर अहिंसक समाज की रचना के लिए गाँव में जायगा और ग्रामदान, ग्रामराज की सिद्धि की वहाँ कोशिश करेगा, उसे क्रांति के नये मूल्यों के अनुरूप अपना जीवन ढालना चाहिए, अन्यथा हमारी क्रांति में से प्रति-क्रांति पैदा होने का खतरा है और जाने-अनजाने हम ही उस प्रति-क्रांति के औजार बनेंगे। अगर हम शोषणमुक्त समाज की स्थापना करना चाहते हैं, तो शोषण-मुक्ति की प्रक्रिया का आरंभ हमें अपने जीवन से ही करना होगा।*

---

* नयी तालीम-अध्ययन-गोष्ठी, सेवाग्राम में ता. ७-७ को दिया हुआ भाषण।

www.vinoba.in

तंत्रमुक्ति का अर्थ और स्वरूप

(धीरेंद्र मजूमदार)

प्रश्न : अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ ने तंत्रमुक्ति का प्रस्ताव किया। प्रस्ताव के अनुसार भूदान-समितियों का विघटन किया तथा स्वतंत्र सत्याग्रही लोक-सेवकों का आवाहन भी किया। जगह-जगह लोक-सेवक काम पर भी लगे हैं। लेकिन फिर भी निवेदक की नियुक्ति हो रही है। इसका मतलब यह हुआ कि तंत्र जैसे के तैसे खड़े रहें! फर्क इतना ही हुआ कि समितियों के होने से आन्दोलन के नियन्त्रण में जो कुछ लोकतांत्रिक स्वरूप काम करता था, सो अब वह भी खत्म हो गया! अब तो आपने एक आदमी के हाथ में ही सारा अधिकार दे दिया! उससे तंत्र-मुक्ति का विचार कहाँ सिद्ध होगा?

उत्तर : तंत्र-मुक्ति का मतलब व्यवस्था-मुक्ति नहीं। जब आन्दोलन चलेगा, तो उसकी जानकारी दुनिया को भी चाहिए। सेवकों को भी एक-दूसरे के अनुभव से लाभ उठाने की जरूरत है। मैंने कई बार कहा है कि सेवकों का अनुभव-विनिमय सम्मेलन-पद्धति से होगा। लेकिन हमेशा सम्मेलन नहीं हो सकेंगे। रोजमर्रा के काम-काज और अनुभव को बटोर कर सब जगह फैलाने की कोई व्यवस्था चाहिए। आन्दोलन का उतना हिस्सा सर्व-सेवा-संघ ने अपने ऊपर ले लिया है। इसका मतलब यह नहीं है कि आन्दोलन सर्व-सेवा-संघ के संचालन में चले। पहले वैसा ही होता था। पर तंत्र-मुक्ति के प्रस्ताव के साथ सर्व-सेवा-संघ इस प्रकार संचालन की जिम्मेदारी से मुक्त हो गया है। अब आन्दोलन विनोबा के मार्गदर्शन में स्वतंत्र लोक-सेवकों के जरिये चलेगा। सर्व-सेवा-संघ ने अपने दफ्तर और व्यवस्था के जरिये विनोबा या दूसरे लोक-सेवकों की सेवा करने का काम उठाया है। संघ किसी को आदेश नहीं करेगा। आप लोगों की आवश्यकता की पूर्ति में जितना हो सकेगा, उतना वह करेगा। इस प्रकार की सेवा तथा व्यवस्था के लिए जगह-जगह ऐसे लोक-सेवक चाहिए, जो संघ और अनेक सेवकों के बीच सम्पर्क बनाये रखें। संघ की बात सेवकों तक पहुँचाना ही उनका काम है। जिले भर के कार्य का नियंत्रण या नियामक वे नहीं होंगे। कोई भी लोक-सेवक चाहे तो निवेदक की सलाह के बिना ही अपने क्षेत्र में काम कर सकता है। ऐसी हालत में आप जो सोचते हैं कि संघ लोक-तांत्रिक तरीकों को छोड़ कर एकतांत्रिक हो गया, सो यह बात गलत है, बल्कि संघ अतांत्रिक ही है।

प्रश्न : क्या एक जिले का लोक-सेवक किसी दूसरे जिले के निवेदक के मार्गदर्शन में भी अपना काम कर सकता है?

उत्तर : अवश्य कर सकता है। जिस सेवक को जिस किसी दूसरे सेवक से समाधान होगा, वह उससे मार्गदर्शन ले सकता है। निवेदक ही नहीं, किसी जिले का कोई भी लोकसेवक अगर मार्ग-दर्शन के योग्य है, तो किसी दूसरे जिले के लोक-सेवकों को वह अवश्य सलाह देगा। लोक-सेवकों को अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य के अनुसार परस्पर-सेवा-धर्म चलाना है। इस परस्पर-सेवा से ही संघ का निर्माण होता है। ऐसे संघ का 'संस्था-रूप' न होकर 'बिरादरी-रूप' होता है। अतः आप लोगों को इस बात की परेशानी नहीं होनी चाहिए कि हम किसी एक के हाथ के नीचे बँध गये हैं। आप पूर्ण-रूप से मुक्त हैं। लेकिन आप अगर सर्व-सेवा-संघ के दफ्तर से सम्बन्ध रखना चाहते हैं, तो निवेदक की मार्फत ही वह करना होगा, क्योंकि संघ के दफ्तर के लिए यह संभव नहीं है कि आन्दोलन के विवरण आदि के लिए असंख्य लोक-सेवकों से सीधा सम्पर्क रखें। आप कहीं पर भी जाने के लिए स्वतंत्र रूप से मुक्त विहार कर सकते हैं, चाहे जिधर से गुजर सकते हैं। लेकिन अगर आप रेलगाड़ी या मोटरबस का इस्तेमाल करना चाहेंगे, तो आपको उसके बनाये फाटक से ही घुसना होगा। चाहे जिधर से तार या हद तोड़ कर आप नहीं घुस सकते, क्योंकि उनकी उतनी मर्यादा है और उसे मान कर ही उसका इस्तेमाल हो सकता है। उसी तरह किसी भी संस्थागत व्यवस्था की भी कुछ मर्यादाएँ होती हैं। उन मर्यादाओं को मान कर ही उसे इस्तेमाल करना होगा।

मैंने जो यह कहा है कि हर लोक-सेवक मुक्त विहार कर सकते हैं, जब चाहे जिससे सलाह ले सकते हैं या किसीसे सलाह लिये बिना ही काम कर सकते हैं, तो इसका मतलब यह नहीं है कि लोकसेवकों के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है। बिना गुरुजनों के, सेवकों की साधना भी सिद्ध नहीं होती है। इसलिए यद्यपि सब लोग स्वतंत्र हैं, तथापि उन्हें अपने मार्गदर्शन के लिए किसी एकाध व्यक्ति को चुनना चाहिए, जिनसे उनका समाधान हो और मुख्यतः उन्हींकी सलाह लेनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि आन्दोलन का स्वरूप भी ऐसा नहीं होना चाहिए कि एक-दूसरे के कार्यक्रम का सामंजस्य न हो। अतः जहाँ हरएक लोक-सेवक को अपने लिए किसी पथ-प्रदर्शक को चुनने की आवश्यकता है, वहाँ यह भी आवश्यक है कि लोक-सेवकों से सामूहिक चर्चा करके हरेक सेवक अपने लिए एक सामान्य कार्यक्रम भी निर्धारित कर लें।

प्रश्न : इस प्रकार के मुक्त आन्दोलन के लिए क्या संस्थाओं की कोई आवश्यकता नहीं है?

उत्तर : अवश्य है। लेकिन वह केन्द्र या आश्रम के रूप में होगी, न कि संचालन या संगठन के रूप में। ऐसे केन्द्र का काम नियोजन करने का भी नहीं होगा, नियंत्रण का तो प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी संस्था या आश्रम गुरुकुल जैसा होगा, जहाँ समाज की समस्याओं के समाधान का प्रयोग होगा, लोक-शिक्षण का काम होगा तथा अपने क्षेत्र में कहीं आवश्यकता पड़ने पर समुचित मार्ग-दर्शन का भी कार्यक्रम रहेगा। वस्तुतः अखिल भारतीय पैमाने पर सर्व-सेवा-संघ का भी वही काम होना चाहिए। जैसा सर्व-सेवा-संघ है, उसी तरह जगह-जगह दो-चार लोक-सेवकों के परिवार को लेकर एक आश्रम के रूप में शिक्षण-संस्थाओं का संगठन करना होगा, जहाँ से हर क्षेत्र के सेवकों का तथा जनता का मार्ग-दर्शन होता रहे। जैसे-जैसे केन्द्र के सदस्यों की साधना का विकास होगा, वैसे-वैसे आसपास की जनता को वे अधिक-अधिक ज्ञान-प्रकाश दे सकेंगे और जिस अनुपात में जनता पर उनके ज्ञानप्रकाश की गहराई का असर पड़ेगा, उस क्षेत्र में क्रांति का प्रसार होगा।

ऐसे केन्द्रों के अलावा कुछ अखिल भारतीय सेवक भी होंगे, जैसे जयप्रकाश बाबू, दादा धर्माधिकारी, शंकररावजी देव, विमला बहन आदि। ये लोग देश भर में घूमेंगे तथा संस्था और सेवकों का मार्गदर्शन करते रहेंगे। इस प्रकार तंत्र-मुक्त होने पर भी आन्दोलन न विशृंखलित रहेगा और न अव्यस्थित।

वस्तुतः समाज के सुसंगठन के लिए तंत्र-मुक्ति का विचार नया है। विनोबा ने देश को एक बहुत बड़ा विचार दिया है। शासन-मुक्त समाज की कल्पना मनुष्य ने सदियों से की है, लेकिन उसकी प्राप्ति कैसे होगी और उसके लिए प्रक्रिया या कार्यक्रम क्या होगा, इसका समाधान-पूर्ण उत्तर अभी नहीं मिला है। तंत्र-मुक्त आन्दोलन सुशृंखलित तथा सुव्यवस्थित होने पर ही शासन-मुक्त समाज का मार्ग उपलब्ध हो सकता है। विनोबा ने उसके लिए एक दिशा-निर्देश किया है। उसका अमल कैसे होगा, इसका रास्ता आपको और हमको ढूँढ़ना होगा। प्रयोग करते हुए सफलता तथा असफलता के बीच से गुजरते हुए आपको मार्ग निकालना होगा। तंत्र-मुक्ति में जिनकी निष्ठा या आस्था नहीं है, उनके लिए शासन-मुक्त समाज की कल्पना करना विडम्बना मात्र है। मुझको विश्वास है कि आप इस पर गंभीरता के साथ विचार करेंगे और रास्ता खोजने का प्रयत्न करेंगे।

पत्र-संपुट :

हम अपने को समाजार्पण करें!

हम अपनी कोई निजी समस्या कभी न बनायें। लोग कहते हैं, स्वाधीन होना है, स्वतंत्र होना है! एकनाथ ने भागवत में एक बड़ी मजे की बात बतायी है। उन्होंने कहा, "हे भगवान्, मुझे पराधीन बनने की कला सिखाओ!" तो हम चिंता न करें; समाज जो और जैसा उपयोग लेगा, उसमें समाधान मान लें।

हमारा ध्येय क्या है? देह-मुक्ति। दुनिया में अनेक समस्याएँ हैं, उनके बीच तटस्थ बन कर रहें। द्रष्टा या साक्षी होने में ही मुक्ति है।

जमात कैसी चाहिए?

आज दुनिया भर में सेवा का बोलबोला है। लेकिन वह सकाम सेवा ही चल रही है। अपने लिए, अपनें परिवार के लिए या तो फिर अपनी संस्था के लिए लोग फल की आसक्ति रखते हैं। पर आपके हाथ से निष्काम-सेवा होते रहनी चाहिए। हमें तो ऐसी जमात चाहिए कि जो सेवा ही करती रहेगी, सत्ता की इच्छा तक नहीं रखेगी।

अहिंसा में तीव्रता

अत्यंत मंद गति से, समाज-रचना में कोई परिवर्तन न करते हुए काम करना, यही यदि अहिंसा की व्याख्या हो, तो अहिंसा के लिए वह बहुत बड़ा खतरा है। भगवान् बुद्ध ने कह दिया है कि "तंद्रितं कुर्वतः पुण्यं पापेहि रमते मनः"

—"आलसी बनकर मंदगति से पुण्यकर्म का आचरण किया, तो पाप शीघ्र गति से बढ़ता है!" इसलिए अहिंसा में तीव्र वेग जरूरी है। —विनोबा

www.vinoba.in

सत्य और मैं!

(महात्मा भगवानदीन)

आदमी की यह जबरदस्त इच्छा है कि वह आत्मा को देखे। यह भी जबरदस्त इच्छा है कि वह जाने कि जीवन क्या चीज है? और मालूम है कि वह इसके लिए क्या-क्या करता है? मेंढ़कों को उबाल कर चीरता है। जब उसे कुछ पता नहीं चलता, तो जीवित मेंढ़क को चीरता है और न जाने क्या-क्या, इसी तरह के मूर्खता के काम करता है। और इसे उसने नाम दे रखा है "वैज्ञानिक खोज"।

आदमी का बस चलता, तो वह आदमियों को भी चीर-चीर कर देखता और हवा-बंद शीशे की बोतल में आदमी को रख कर देखता कि आत्मा क्या चीज है, किधर से निकलती है, किस शकल की है और तौल में कितनी है?

इतने दिन की मेहनतों के बाद भी वह खाक नहीं समझ पाया कि आत्मा क्या है और जीवन क्या है और जो कुछ वह समझा है, वह न आत्मा है, न जीवन। आत्मा क्या है, यह बात उसकी समझ में यों नहीं आ सकती कि देह और आत्मा इस तरह एकमेक हैं, जैसे पदार्थ और शक्ति। शक्ति ही पदार्थ है और पदार्थ ही शक्ति है। पदार्थ न अलग कोई चीज है, न शक्ति ही कोई अलग चीज है।

जिस तरह देह और आत्मा अलग-अलग नहीं मिल सकते, उसी तरह सत्य और व्यवहार अलग-अलग नहीं मिल सकते। जिन-जिन ऋषियों और महापुरुषों ने सत्य की खोज की है, उन्होंने मृत या जीवित व्यवहार को चीरा है। उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ा। बड़ी हिम्मत के साथ एक ऋषि कह ही गया कि "यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं।"

सत्य-रूपी बाल की खाल उधेड़ कर किसीके हाथ कुछ नहीं आने का। क्या कभी कोई अपने मकान का कूड़ा साफ करके उसे बेकूड़ा बना पाया है? ठीक इसी तरह सत्य को कितना ही क्यों न धोया जाय, वह धोया हुआ सत्य, जो आदमी के पल्ले पड़ेगा, वह मैला ही होगा। सम्भव है और भी ज्यादा मैला हो। जैसे आदमी की खाल के नीचे उससे भी ज्यादा बुरी चीज है, वैसे ही सत्य के ऊपर के व्यवहार-खोल के नीचे उससे भी ज्यादा मैला खोल मिल सकता है।

कभी-कभी मेरा मन मचल पड़ता है और मैं अपना भगवान् बना कर मन ही मन उससे यह प्रार्थना करने लगता हूँ कि हे भगवान्, मुझे इन दार्शनिकों से बचा! ये सीधी-सादी बात को टेढ़ी-मेढ़ी करने के सिवा और करते ही क्या हैं?

एक दिन की बात है, जमनालाल जैन मुझे एक पुस्तक* में से वह संवाद सुनाने लगे, जो गांधीजी और विनोबा में हुआ था। वह इस प्रकार है:

* * *

"जब रावण सीता को हर ले गया, तब लंका जाते समय सीता ने रास्ते में अपने गहने एक-एक करके फेंक दिये, जिससे रामचंद्र को पता चले कि उसे किस रास्ते से ले जाया गया है। लक्ष्मण ने जवाब दिया:

'नाहं जानामि केयूरे, नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात्॥'

'केयूर और कुण्डल, जो ऊपर के हिस्से के गहने हैं, वे तो मैं नहीं पहचानता, लेकिन नूपुरों को पहचानता हूँ, क्योंकि प्रतिदिन सीताजी की पदवन्दना करते समय मैंने उन नूपुरों को देखा था!'

एक दफा साबरमती-आश्रम में इस पर चर्चा चली। बापू तो क्रांतिकारी ही थे। उन्होंने कहा कि 'लक्ष्मण का यह वाक्य मुझे अच्छा नहीं लगता है।' फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि 'तेरी इस पर क्या राय है? तू तो शास्त्र बहुत अच्छी तरह जानता है।' मैंने कहा कि 'आपने जिस दृष्टि से वह वाक्य नापसंद किया, उस दृष्टि से तो वह नापसंद करने ही लायक है, क्योंकि लक्ष्मण ब्रह्मचारी था और उसने सीता का मुख ही नहीं देखा था। अगर ब्रह्मचारी ऐसी मर्यादा से रहे कि वह स्त्री का मुख नहीं देखे, तो वह गलत बात है। परंतु मैंने इस वाक्य का दूसरा अर्थ देखा है। इसमें तो लक्ष्मण ने सीता के चेहरे की तरफ नहीं देखा, इतना ही नहीं है। इसमें तो रामजी उससे पूछ रहे हैं। इसका मतलब है कि रामजी भी उन गहनों को नहीं पहचानते थे। मतलब, पति ही पत्नी के गहने नहीं पहचान रहा है!

'इसके माने है कि क्या सीता और क्या राम, दोनों अनासक्त थे। दोनों एक-दूसरे की आकृति नहीं देखते थे, बल्कि एक दूसरे को ब्रह्म के रूप में ही देखते थे। लेकिन लक्ष्मण तो सीता के चरणों की पूजा करता था, पादाभिवन्दन करता था। इसलिए वह उपासना के तौर पर चरणाकृति को देखता था, तो उसमें पैर के गहने भी आ जाते थे। वह गहनों के साथ की चरणाकृति को मूर्ति समझ कर उपासना करता था...' जब मैंने यह अर्थ बताया तो बापू ने कहा कि 'तू तो शास्त्र-वचनों का बहुत अच्छा बचाव करना जानता है।' वे बोले कि 'यह सही है। और होना भी यह चाहिए कि जहाँ तक हो सके, शास्त्रवचनों का अच्छा अर्थ ही करना चाहिए।' इसलिए जहाँ ब्रह्मचारी के मन में यह भावना आयी कि सामने जो स्त्री आयी है, उसे मैं नहीं देख सकता, तो वह उसकी कमी मानी जायगी।"

* * *

इसे सुन कर मुझे हँसी आ गयी और मैं जमनालाल से कह बैठा कि इस सीधी-सादी बात में ये दो दार्शनिक क्यों उलझ बैठे। उन्होंने यह क्यों न सोचा कि यह सब वाल्मीकि की कल्पना है। न सीताजी पागल थीं, न राम, जो घर छोड़ कर जंगल में गहने साथ ले जाते और फिर अगर मान ही लिया जाय कि वह गहने पहने थीं, तो सभी औरतें तो गहने पहनती हैं। उन्हें कौन इस गरज से देखता फिरता है कि एक दिन हमें पहचानना पड़ेगा, यह हमारी ही भाभी या हमारी ही घरवाली के जेवर हैं। यह सुन कर जमनालाल बोले, यह तो आपने बड़ी ठीक बात कही। मैं अपनी ही घरवाली के जेवर कहाँ देखता फिरता हूँ।'

अगर सीताजी सचमुच जेवर पहने थीं और रावण जब उन्हें ले गया और वह इसी गरज से जेवर गिराती गयीं कि उनके पति और देवर जब देखेंगे, तो वे उनका पता लगा लेंगे, तो रामचन्द्रजी के लिए यह ऐसा ही स्वाभाविक था, जैसा किसी मामूली ग्रामीण के लिए कि वह उन्हें पाकर अपने भाई से पूछे कि अरे भाई, तुम इन जेवरों को पहचानते हो और भाई यह जवाब दे कि इन सबमें से और तो नहीं, एक यह पाँव का जेवर तो पहचानता हूँ, क्योंकि वह मेरी बड़ी भाभी थीं, इसलिए कभी-कभी उनके पाँव छुआ करता था!

दोनों मशहूर आदमी यह नोट कर लें कि लाख पीछे एक भी आदमी न लक्ष्मण के चरित्र से शील सीखेगा और न रामचन्द्रजी से अनासक्ति। सीधे-सादे वर्णन से जितना असर मनुष्य के मन पर पड़ता है, उतना टेढ़े वर्णन से नहीं पड़ता।

रही बाल की खाल उधेड़ने की बात! तो लाइये हम लक्ष्मण से यह कहलवा देते हैं कि 'भाई साहब, मैंने तो कभी उनके पाँव भी नहीं देखे और मैं ब्रह्मचारी उनके पाँव देख भी कैसे सकता था। मैं तो सिर्फ उनके पाँव के नीचे की धूल देखता था और सो भी इस बात का खूब ख्याल रखता था कि कहीं उनकी तरफ से मेरी तरफ हवा न चल रही हो और उनके पाँव के नीचे के धूलि-कण कहीं मेरे अंग के किसी हिस्से को न छू लें!'

अब बताइये, मैं गांधीजी और विनोबाजी से बढ़कर दार्शनिक हूँ या नहीं! पर क्या मेरी यह दार्शनिकता रत्ती भर भी व्यवहार में काम आ सकती है? मेरा दावा है कि मेरी यह बात जवानों के चरित्र को गिराने में मदद करेगी, पर मेरी यह बात कि भाई साहब, देखा तो सीताजी को बहुत बार था, उनसे बातें की थीं, एक बार उनकी चोटी भी गूँथी थी, कई बार चूड़ियाँ चढ़ाई थीं, पर गहनों को इस खयाल से नहीं देखा था। इसलिए मैं तो यह ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि ये सीताजी के ही जेवर हैं—लोगों के लिए बड़ी उपयोगी साबित होगी और इससे वे ब्रह्मचर्य का पाठ भी लेंगे और अनासक्ति का भी। ऐसा ही घरों में होता भी है।

यहाँ एक बात और नोट कर लेना चाहिए कि हम जब-जब शास्त्रों या धर्म-ग्रन्थों का समर्थन कर रहे होते हैं, तब-तब काव्य और उसके अलंकार का समर्थन कर रहे होते हैं यानी असत्य का समर्थन कर रहे होते हैं।

अंत में मैं यह कह कर अपनी बात खत्म करता हूँ कि मैंने काम-शास्त्र की कई बातें २७ वर्ष की उम्र में, जब कि मैं घर छोड़ चुका था, उन काव्य-ग्रन्थों से सीखी हैं, जिनको धर्म-ग्रन्थ कहा जाता है। उनके पढ़ने से पहले मैं उन चीजों को जानता तक नहीं था।

ऐ कवियो और दार्शनिको! ईश्वर के लिए बाल की खाल उधेड़ना छोड़ो। जैसे देह चीरने से आत्मा हाथ नहीं लगती, वैसे ही व्यवहार को चीरने से सत्य हाथ नहीं लगने का। सत्य को अगर सीखना ही है, तो नागाओं में जाकर रहो, एस्कीमोज से मिलो, आदिम जातियों से मिलो, उन गोंड-भीलों से मिलो, जो आज की सभ्यता से दूर हैं।

---

* 'कार्यकर्ता पाथेय' ले० विनोबा

...भगवान् की तरफ पीठ फेर कर भगवत्कृपा की अवहेलना करना अधिक-से-अधिक मूर्खता का कृत्य है।...

—श्री माताजी

www.vinoba.in

ग्रामगोष्ठी में नन्हे-मुन्नों के बीच !

(सुरेश रामभाई)

गाँव घरबना, तहसील करघना, जिला इलाहाबाद। वहाँ एक प्राइमरी स्कूल है। उसमें छोटे-छोटे बच्चे, नन्हें-मुन्ने पढ़ते हैं। एक दिन हम वहाँ पहुँचे तो, देखा कि बाल-गोपाल खूब खेल रहे थे, आनन्द-सा छाया हुआ था, २६ जनवरी थी। स्कूल की छुट्टी थी, लेकिन गणतन्त्र दिवस मनाने नन्हे-मुन्ने आये थे।

हमारे कहने पर बच्चे दो कतारों में बैठ गये। हमने पूछा कि "आज किस चीज़ की खुशी आप सब मना रहे हैं ?"

एक बालक ने जबाब दिया—"आज २६ जनवरी है।"

"तो आज के दिन छुट्टी काहे की है ?"

सभी चुप हो गये, लेकिन एक बालक ने खड़े होकर कहा—"आज गणतंत्र दिवस है।"

"इसके क्या माने होते हैं ?"

"आज के दिन हमारे देश को पूर्ण स्वतंत्रता मिली।"

"क्या हमारा देश आज आजाद हुआ था ?"

"नहीं, १५ अगस्त, १९४७ को हुआ था।"

"तो आज के दिन क्या बात हुई ?"

"आज पूर्ण स्वतंत्रता मनायी जाती है।"

अब शिक्षक भी बातचीत में दिलचस्पी लेने लगे। फिर हमने पूछा : "पुराने जमाने में राजा के बाद गद्दी का मालिक कौन होता था ?"

"उसका बेटा।"

"अच्छा, आज हमारे राष्ट्रपति कौन हैं ?"

"राजेन्द्र बाबू।"

"क्या उनके बाद उनका बेटा राष्ट्रपति बनेगा ?"

"नहीं, नहीं।"

"पुराने जमाने में ऐसा हो सकता था ?"

"ना।"

"क्योंकि वह राजाशाही थी और तब राजा का बेटा ही राजगद्दी पर बैठ सकता था। इस तरह सिलसिला चलता रहा।

"इस जमाने में स्टालिन नाम का एक शख्स भी सर्वेसर्वा बन कर राज करता था। उस ढंग को तानाशाही कहते हैं। वह जो मन में आए करे, कोई पूछने वाला नहीं था। क्या हमारे राष्ट्रपति इस तरह कर सकते हैं ?"

"नहीं !"

"यानी इसका मतलब यह हुआ कि हमारे देश में राजाशाही नहीं चलेगी, तानाशाही भी नहीं चलेगी। तो फिर क्या होगा ?"

सब चुप।

हमने पूछा—"प्रधान मन्त्री के बाद उनकी जगह कौन लेगा ?"

"वही लेगा, जो चुना जायगा।"

"चुनने का काम कौन करेगा ?"

"सब लोग।"

"कैसे चुनेंगे ?"

"वोट पड़ेगा।"

"ठीक बात है, इस तरह के तरीके को ही लोकशाही कहते हैं। इसीका नाम प्रजातंत्र है, गणतंत्र है और यह लोकशाही २६ जनवरी १९५० से शुरू हुई। इस वास्ते २६ जनवरी को क्या होता है ?"

"छुट्टी रहती है, खुशी मनायी जाती है।"

"खुशी मनाने के लिए क्या चीज चाहिये ?"

एक बालक ने कहा—"खेल का सामान।"

दूसरे ने—"झंडा।"

तीसरे ने—"रंग-रंग की झंडियाँ।"

"मान लो कि झंडियाँ हों, झंडा भी हो, खेल का सामान भी हो, तो खुशी मना लोगे ?"

"हाँ—हाँ।"

एक बालक के पेट पर हाथ रख कर हमने कहा—"लेकिन अगर यह खाली हो, तो खुशी मना सकोगे ?"

"नहीं !"

"तो खुशी मनाने के लिए सबसे पहले क्या चाहिये ?"

"खाने को भोजन !"

"भोजन कहाँ पैदा होता है ?"

"खेत में।"

"तो जिसके पास खेत नहीं हो, उसके बच्चे खुशी मना सकते हैं ?"

"नहीं !"

"तब खुशी मनाने के लिए क्या होना चाहिये ?"

"सबको खेत मिलना चाहिये।"

"बहुत ठीक ! जो लड़के चाहते हों कि सबको खेत मिले, वे हाथ उठायें।"

सबने हाथ उठाये।

"लेकिन यह तो बताओ कि खेत सबको मिलते क्यों नहीं ?"

"कुछ के पास खेत हैं, वे अपना-अपना रखे हुए हैं।"

"वे क्यों नहीं देते ?"

"वे मालिक हैं !"

"अब यह बताओ कि यह खेत या जमीन किसने बनायी ?"

"ईश्वर ने।"

"हवा-पानी-सूरज की रोशनी भी किसने बनायी ?"

"ईश्वर ने !"

"तो जो चीज ईश्वर ने बनायी, उसकी मालकियत नहीं होती और वह चीज सबको—"

—"बराबर मिलती है।"

"ईश्वर की बनायी चीज के दाम लगते हैं ?"

"नहीं।"

"तब जमीन सबको मिलनी चाहिये ?"

"हाँ—हाँ, मिले चाहे।"

"धरती के दाम लगने चाहिये ?"

"नहीं !"

"जो लड़के कहते हैं कि जमीन सबको मिलनी चाहिये और उसके दाम नहीं लगने चाहिये, वे हाथ तो उठायें।"

सबने उठाये।

"तो तुम्हारी सबकी राय है कि जमीन की खरीद-बिक्री बंद हो और इसका आपस में प्रेम से बँटवारा हो।"

"हाँ—हाँ।"

"और जब तक यह नहीं होता ?"

सब चुप, लेकिन एक स्वस्थ विद्यार्थी ने हाथ उठाया और जवाब देने की इजाजत चाही।

"हाँ, कहो, क्या कहते हो ?"

"जब तक जमीन के दाम लगना बंद नहीं होते और जब तक जमीन बँटती नहीं, तब तक हमारी आजादी सच्ची आजादी नहीं कहलायेगी।"

गुरुजी ने खुश होकर उस बालक की पीठ ठोंकी और हमने भी उसे बधाई देते हुए कहा : "शाबाश ! तो सच्ची यानी आर्थिक व सामाजिक आज़ादी के लिए जो कोशिश हो रही है, उसमें तुम योग दोगे ?"

"जरूर देंगे !"

थोड़ी-सी देर में बहुत सारे नाम-पते हमारे पास जमा हो गये। "सबै भूमि गोपाल की", "धरती माता की जय", "महात्मा गांधी की जय", "विनोबा की जय" से विद्यालय गूँज उठा। हमने भक्ति-भाव से नन्हे-मुन्नों को प्रणाम किया।

…छोटे-से-छोटा बच्चा समाज-सेवा का काम सीख सकता है और समाज-सेवा कर सकता है। सड़क पर पड़े हुए केले या खरबूजे के छिलके को अगर आप उठा कर कूड़े के बर्तन में डाल देते हैं, तो आप अपने बालक को समाज-सेवा का पाठ ही नहीं देते, समाज-सेवा के लिए तैयार भी कर देते हैं। आप दूसरे ही दिन देखेंगे कि वह आपको वह छिलके उठाने ही नहीं देगा, खुद ही उठायेगा और खुद ही कूड़ेघर में डालेगा। अगर कूड़े का बर्तन ऊँचा है, तो वह कूद कर भी उसमें फेंकेगा, पर आपकी मदद लेना पसंद नहीं करेगा!

—महात्मा भगवानदीन

www.vinoba.in

चीन की कृषि-सहकार-प्रणाली : प्रतिवेदन

चीन की कृषि-सहकार-प्रणाली का अध्ययन करने के लिए श्री आर. के. पाटील के नेतृत्व में जो शिष्ट-मंडल पिछले दिनों चीन गया था, उसकी रिपोर्ट का सारांश इस प्रकार है :

शिष्ट-मंडल ने यह राय दी है कि आर्थिक और सामाजिक, दोनों दृष्टियों से भारत में सहकारी खेती जरूरी है, क्योंकि सहकार-प्रणाली से खेती अच्छी होगी और उपज बढ़ेगी, साथ ही काम भी बढ़ेगा और लोगों का रहन-सहन ऊँचा होगा। परंतु शिष्ट-मंडल ने इस बात पर भी जोर दिया कि सहकारी खेती में शामिल होने के लिए किसानों पर दबाव न डाला जाय और उसमें शामिल होने के बाद भी यदि कोई किसान उसे छोड़ना चाहे, तो फसल खतम होने पर उसे वैसा करने दिया जाय। रिपोर्ट में कहा गया है कि चीन में सहकार-प्रणाली इस कारण सफल हो सकी कि लोगों ने इसके लिए खुद प्रयत्न किये और सरकार तथा कम्युनिस्ट पार्टी ने भी इसमें पूरी ताकत लगायी। काम में ढिलाई न हो, इसलिए काम का लक्ष्य वहाँ स्थिर कर दिया जाता है, जो औसत कर्मचारी के औसत काम के आधार पर होता है। रिपोर्ट में कहा गया है कि कामगारों से कृषि-सहकार अधिकारी रजामंदी से ही काम कराते हैं, अधिकार के बल से नहीं! स्त्रियाँ भी इस काम में काफी रुचि लेती हैं। सरकार सहकार-समितियों को यथेष्ट ऋण भी देती है।

वहाँ भूमि-सुधारों के कारण बड़े किसान अब नहीं रहे हैं, इसलिए सहयोगी कृषि में सफलता भी सहज प्राप्त हो सकी है। खेती करने की इच्छा रखने वाले को जमीन दे दी गयी। कृषि-सहकार-समितियों में निम्न मध्यवित्त के तथा गरीब किसानों को ही रखा गया। शिष्ट-मंडल ने यह स्वीकार किया है कि चीन में भूमि-क्रांति करने में बल-प्रयोग और हिंसा भी हुई है। पर अब ज्यादातर किसान अपनी इच्छा से सहकार-समितियों में शामिल हैं। जो शरीक नहीं हुए, उन पर जबर्दस्ती नहीं। सहकारी खेती करने के लिए दमन या लाचारी के चिह्न कहीं नहीं दिखे, बल्कि उत्साह और जोश ही दीख पड़ा।

शिष्ट-मंडल ने जापान की भी कृषि-व्यवस्था का अध्ययन करके कहा—बीज, ऋण आदि की सहकार-व्यवस्था का लाभ वहाँ काफी किसान लेते हैं। बिक्री में भी सहकार-समितियाँ मदद करती हैं। वहाँ सहकार-खेती नहीं है, न वैसा कोई प्रयत्न। खेती व्यक्तिगत होती है, बाकी चीजों में सहकार।

शिष्टमंडल ने हिंदुस्तान के लिए सलाह दी है कि यहाँ के किसानों को सामूहिक अनुशासन और जीवन का नया ढंग अपनाना होगा, तभी सहकारी खेती पनप सकेगी। सहकारी खेती से उत्पादन में वृद्धि, अनेक आर्थिक लाभ आदि शिष्टमंडल ने गिनाये और सुझाव दिया है कि मजदूरों से खेती कराने की प्रथा खतम करके जमीन उन्हींको मिलनी चाहिए, जो खुद खेती करें।

शिष्टमंडल के दो सदस्यों ने इस रिपोर्ट के विपरीत राय प्रकट करते हुए कहा कि चीन की कृषि-नीति उसके अमल के तरीकों और कम्युनिस्ट विचारधारा से जुड़ी हुई है, अतः यह धारणा गलत है कि वहाँ की कृषिनीति तो हम अपनायें, पर उसको लागू करने के तरीके न अपनायें! चीन की भूमिनीति वहाँ के किसानों को मजदूर भी बना देती है। वहाँ सामूहिक खेती स्वेच्छा से नहीं, बड़े दबाव और हिंसा से शुरू हुई। सहकार-समितियों का ढाँचा भी लोकतंत्री और स्वेच्छया नहीं है। पदाधिकारियों आदि के चुनाव में भी पार्टी का पूरा हाथ रहता है। इन सबकी तुलना में जापान की कृषिनीति अच्छी है। हमारे यहाँ निजी खेती होने के कारण नहीं, बल्कि धनादि के अभाव में खेती पनप नहीं पाती।

इस पर श्री पाटील साहब ने कहा, 'सहकारी खेती जबर्दस्ती थोपने का प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन इसका विचार छोड़ने के पहले, इसका अच्छी तरह प्रयोग तो कर लिया जाय!'

(भारत-सरकार के पत्र-सूचना-मंत्रालय के पत्रकों से)

—रामनगर कटरा (मुजफ्फरपुर), बिहार में १९ जून को एक विराट सभा हुई, जिसमें श्री जयप्रकाशजी का ग्रामदान पर महत्त्वपूर्ण भाषण हुआ। ३० व्यक्तियों ने ग्रामदान के निमित्त संपूर्ण स्वामित्व-विसर्जन का संकल्प घोषित किया। श्री सत्यदेव सिंह (तेहवारा), श्री हरिनारायण मिश्र, श्री विश्वनाथ महासेठ (काँटा), श्री विमल प्रसाद सिंह (बरुवारी), डॉ. शत्रुहन प्रसाद सिंह आदि भी इनमें शामिल हैं। इस संकल्प-घोषणा के फल स्वरूप पड़ोस के इलाके में सर्वस्व-दान एवं ग्रामदान के अनुकूल वातावरण तैयार हो गया है।

भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण

पंजाब-भूदान-सतत पदयात्री दल की प्रगति

पंजाब-भूदान-सतत पदयात्री दल १ जुलाई से १५ जुलाई तक लुधियाना जिले की जगराओं तहसील और संगरूर जिले की बरनाला और सनाम तहसील में घूमा। जगराओं से भिखी तक कुल १६ गाँव और शहरों की ७८ मील यात्रा हुई। हिंदुस्तानी तालीमी-संघ सेवाग्राम के विद्यार्थी श्री रामचंद्र और वासुदेव, नयी तालीम-केंद्र राजपुरा के श्री जगदीशचन्दजी और बरनाला के ८ भाई भी यात्री-दल में शामिल हुए। १-२ जुलाई को जगराओं में स्थानीय हाईस्कूलों में तथा कार्यकर्ताओं के लिए प्रचार-सभाएँ हुईं। भूमि और संपत्तिदानपत्र भरे गये। २२५) की साहित्य-बिक्री हुई। यह सारा इलाका भूदान-कार्य के लिए नया है, परंतु साधारणतया नगरों में क्रांति-संदेश पहुँचाने के लिए सतत कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। तहसील बरनाला और सनाम के लोगों ने बहुत उत्साह से सहयोग दिया। इस इलाके में यह पहली ही पदयात्रा है। अतः केवल वातावरण-निर्माण का कार्य हो सका। इस पक्ष में ४६ दाताओं द्वारा १८००) वार्षिक के संपत्तिदान-पत्र और ७ दिन का समयदान प्राप्त हुआ। १५ नये यात्री यात्री-दल में शामिल हुए। १७ ग्राहक बने, ७ बहनों ने खादी-व्रत लिया। कुल ३२५) की साहित्य-बिक्री हुई।

ता० ३० जून तक की फलश्रुति : पदयात्रा कुल मील ३२६८, पड़ाव ४७८, भूमि-प्राप्ति ४६५२ बीघा, संपत्तिदान ३४४५०), २९५९ अन्नदान, ३७००) की साहित्य-बिक्री, ४११ ग्राहक बने, ८ मकान, ६ बैल, ७३ परिवारों में १३१० एकड़ भूमि-वितरण हुआ।

—यशपाल मित्तल

ग्रामीणों द्वारा अभिक्रम

आन्दोलन का नेता गाँव का किसान हो, ऐसा बापू चाहते रहे और विनोबाजी भी प्रायः यही कहा करते हैं। यही अनुभव हमें अभी आया, जो न सिर्फ प्रेरक है, नये युग का संकेत भी उसमें प्रकट होता है। कुछ ग्रामीण किसानों ने सामूहिक पदयात्रा के रूप में भाग लेने का साहस किया और शिविर भी लेना तय किया। यहाँ तक कि शिविर-खर्च की जिम्मेवारी भी एक निष्ठावान किसान श्री जीवनलाल लोधी और उनके मित्रों ने ली।

उत्तर नर्मदा क्षेत्र में ता. १४ जुलाई से २१ जुलाई तक के इस भूदान-शिविर का उद्घाटन लोलरी ग्राम में श्री दादाभाई नाईक ने तथा संचालन खण्डवा के श्री जादवजी मारू ने किया। बरसात और कीचड़ होने पर भी आसपास के ग्रामों से लगभग तीन सौ व्यक्ति आये थे। दूसरे दिन ३८ पदयात्री १५ टोलियाँ बना कर निकल पड़े। सबने ६ दिन तक कुल १०६ ग्रामों में ३१४ मील की पदयात्रा की। २१ जुलाई को सब फिर इकट्ठे हुए। कुल ३८ दानपत्रों द्वारा १३० एकड़ भूमि-दान मिला, ८ परिवारों में ४३ एकड़ भूमि का वितरण किया गया। १२२) की साहित्य-बिक्री हुई। ८ भूदान-ग्राहक बने, साधनदान आदि मिला। २८ व्यक्तियों ने आंशिक समय-दान दिया। यह यात्रा ग्रामदान के वातावरण के लिए बड़ी अनुकूल सिद्ध हो रही है। पड़रिया के श्री छिदामीलाल ने अपनी १३ एकड़ बढ़िया भूमिसहित सर्वस्व-दान दिया तथा उसी गाँव के श्री धर्मदास और पूरनलाल का जीवन-दान मिला। निश्चय हुआ कि ये तीनों जीवनदानी इस १३ एकड़ भूमि पर मिल कर काश्त करेंगे तथा स्वावलंबी जीवन बिता कर भूदान-प्रचार करेंगे।

आगामी १७ अगस्त से एक ग्रामदान-शिविर करने का निश्चय किया है। नरसिंह जिले का यह प्रथम आयोजन था, जो खर्च एवं अन्य व्यवस्था की दृष्टि से सर्वथा स्थानीय आधार संपन्न हुआ।

रुद्रप्रताप आश्रम, नरसिंहपुर (म. प्र.) —जसवन्तराय

हजारीबाग जिले में समयदानी विद्यार्थियों की पदयात्रा

एक वर्ष का समयदान करने वाले विद्यार्थियों की पदयात्रा २० जुलाई से श्री लक्ष्मी बाबू के नेतृत्व में हजारीबाग जिले में चल रही है। विद्यार्थी-कार्यकर्ता श्री श्यामबहादुर सिंह के नायकत्व में विद्यार्थियों की यह टोली घोर बारिश के बावजूद घूम रही है। गाँव-गाँव में ग्रामदान का विचार प्रचारित करना और हजारीबाग जिले की भूदान में प्राप्त जमीन के वितरण के लिए पूर्वतैयारी करना, ये दो मुख्य उद्देश्य इस पदयात्रा के हैं। कई विद्यार्थी शीत ज्वर से आक्रांत हुए और स्वस्थ होने पर पुनः यात्रा में लग गये। श्री कृष्णवल्लभ बाबू ने हजारीबाग जिले के भूवितरण के कार्य में पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया है। श्री लक्ष्मी बाबू के जगह-जगह प्रेरक भाषण होते हैं।

www.vinoba.in

ग्रामदान की गंगा में–

—वर्धा जिले की आर्वी तहसील में गोदरी, लहादेवी, टेकाकोल्हा एवं वर्धा तहसील में वागदरा, ऐसे कुल ४ गाँव ग्रामदान में प्राप्त हुए।

—वर्धा जिले के सेवाग्राम सर्कल में भी १५ जुलाई को 'पवनी' गाँव ग्रामदान से पावन हुआ। गाँव की घर-संख्या १३, जनसंख्या ६०, काश्तकार २६, मजदूर-परिवार २ और जमीन २९३ एकड़ है। अन्य कोई धंधा वहाँ नहीं।

—बिहार के पूर्णियाँ जिले में खजांचीहाट थाने के जोतलखाई गाँव के चरकठिया संथाली टोले के ३६ भूमिवान तथा १२ भूमिहीन संथाल-परिवारों का ग्राम श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरीजी को ग्रामदान में मिला। इस टोले की आबादी २४४ तथा जमीन का रकबा ३४० एकड़ का है। ग्रामदान-समिति का गठन भी वहाँ तुरंत कर दिया गया।

—नगर जिले में ग्रामदानी गाँव सारोले की भूमि का पुनर्वितरण किया गया।

—प. खानदेश में कुल ४३ ग्रामदान प्राप्त हुए। आजरा महाल (जि० कोल्हापुर)में प्राप्त ग्रामदानी गाँवों के कार्यकर्ता पुनर्निर्माण-योजना में लगे हैं।

—उड़ीसा के ग्राम-दान के १००० गाँवों के विकास की सर्व-सेवा-संघ की योजनाओं को भारत-सरकार ने स्वीकार कर लिया है और वह इसके लिए दूसरी आयोजना की अवधि में राज्य-सरकार को ६८ लाख रु० का अनुदान देने को भी तैयार हो गयी है।

—पार्लमेंट में श्री वायलेट अल्वा, उपमंत्री स्वराष्ट्र।

गाँवों की प्रदक्षिणा में-

बड़ोदा जिले के सौ गाँवों की प्रदक्षिणा में निकला हूँ। जिले में कुल आठ ग्रामदान और 'ग्राम-समर्पण' के दो संकल्प हुए हैं। 'ग्राम-समर्पण-संकल्प' से मतलब है, गाँव के पचास फीसदी से कम लोग अपनी मालकियत छोड़ कर ग्रामदान के लिए तैयार हैं। जब पूरा ग्राम मिलेगा, तब वह ग्रामदान कहलायेगा।

श्री बबलभाई मेहता भी साथ हैं। ग्रामदानी गाँवों में पुनर्निर्माण-कार्य शुरू हो गया है। वर्षों से उलझे प्रश्न सुलझ रहे हैं। प्रदक्षिणा की विशेषता यह है कि ग्रामदानी गाँवों के भाई हमारे साथ चलते हैं, लोगों को खुद होकर समझाते हैं और अच्छी हवा बनाते हैं। 'सबकी जमीन सबको काम' के नारे गाँवों में गुंजारित हो रहे हैं।

रंगपुर-आश्रम, पानवड़ (बड़ोदा) —हरिवल्लभ परीख

—ग्रामदान-प्रचारार्थ एक टोली ने ७ जून से ३० जून तक शामलाजी प्रदेश में यात्रा करके ग्रामदान के लिए वातावरण निर्माण किया।

—सांबरकांठा जिले के चारों ग्रामदानी गाँवों का निरीक्षण बंबई के भूदान कार्यकर्ता श्री गणपतिशंकर देसाई और श्री गाडोदिया ने २५ जून को किया और नवनिर्माण की दृष्टि से ग्राम-दूकान, खेती-विकास आदि के लिए बंबई सर्वोदय-चेरिटी-फंड की ओर से ८ हजार रुपया दिये गये।

प्रकाशन समाचार

दादा का स्नेहदर्शन : विमला बहन मूल्य ।)

क्रान्ति, साधना, सेवा, सहजीवन, अहिंसा, आस्था, अनास्था आदि ३३ विषयों पर सूत्र-रूप में पू० दादा धर्माधिकारी के विचारों का यह अद्वितीय संकलन है।

विमला बहन का कहना है : "समय-समय पर दादा से मेरी जो चर्चाएँ होती थीं, उनके कुछ महत्त्वपूर्ण अंश मैं टाँकती चली गयी। उनके पत्रों से विचार-प्रवर्तक अंश भी संकलित करती गयी। सोचा, यह स्नेहपूर्ण भेंट सब भाइयों को प्रिय लगेगी।"

ताई की कहानियाँ : श्रीराम चिंचलीकर मूल्य ।)

यह पुस्तक ८ लघुकथाओं का छोटा-सा संकलन है। 'ताई' से लेखक का अभिप्राय श्री विमला बहन से है। ताई ने अपनी भूदान-यात्रा के जो प्रेरक प्रसंग लेखक को बताये, उन्हींके आधार पर उक्त कथाओं की रचना हुई है।

पता : अ. भा. सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी

स्व० देवदास गांधी

भारतवर्ष में व्यक्ति की जो अपेक्षित आयुर्मर्यादा है, उसकी दृष्टि से भी श्री देवदास भाई गांधी की ५७ वर्ष की अवस्था में मृत्यु अकाल मृत्यु ही मानी जायगी। उनके विश्ववंद्य पिता का संकल्प तो सवा सौ वर्ष जीने का था। इस देश का हर व्यक्ति कम-से-कम शतायु होने की इच्छा रखता है।

देवदास भाई ऐसे व्यक्ति का जीवन अनेक दृष्टियों से लोकोपयोगी था। बाल्यावस्था और युवावस्था में अपने पिता के तत्त्वावधान में उन्होंने दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा-प्रचार का काम बड़ी आस्था और अध्यवसाय के साथ किया। एक लोकश्रुति है कि सांस्कृतिक नातेदारियों से रक्त और विवाह-संबंध की नातेदारियाँ ज्यादा पक्की और ठहराऊ होती हैं। दक्षिण भारत और उत्तर भारत का सांस्कृतिक गठबंधन करने के लिए देवदास भाई राष्ट्रभाषा का कोमल धागा लेकर गये और जब वे गृही बने, तो उन्होंने अपनी कौटुंबिकता को आंतरप्रांतीय और आंतरजातीय गठबंधन से पुनीत किया। बापू और राजाजी की जोड़ी प्रसिद्ध थी। देवदास भाई और लक्ष्मीबहन ने स्नेहियों को समधी बना दिया, आंतरप्रांतीयता की प्राणप्रतिष्ठा वैदिक विधि से अपने गृहजीवन में की।

'Hindustan Times' के सूत्रधारी संपादक, गांधी-स्मारक-निधि के उपाध्यक्ष और वृत्तपत्र-संसार के एक प्रमुख कर्णधार के नाते उन्होंने जो कार्य किया, वह सर्वविदित है।

गांधी-परिवार के हमारे आत्मीय एक के बाद एक दिवंगत हो रहे हैं। उनकी स्मृति को हम स्नेहांजलि चढ़ाते हैं। लक्ष्मी बहन, राजाजी और गांधी-स्मारक-निधि के शोक में हम सब सहभागी हैं।

काशी, ४-८-'५७ —दादा धर्माधिकारी

श्री धीरेंद्रभाई का कार्यक्रम

१८ अगस्त तक राजस्थान में श्री धीरेंद्रभाई की यात्रा होगी। ९ अगस्त से उनका कार्यक्रम इस तरह है : ता. ९ नागौर, १० जोधपुर, ११ सिरोही, १२ उदयपुर, १३ चित्तोड़, १४ भीलवाड़ा, १५ अजमेर, १६-१७ जयपुर, १८ कोटा और बाद में दिल्ली।

—केरल के प्रजा-समाजवादी नेता श्री के. केलप्पनजी ने सर्वोदय-आंदोलन में पूरी तरह लगने के उद्देश्य से प्रजा-समाजवादी पक्ष से त्याग-पत्र दे दिया है। (संकलित)

—श्री विनोबाजी का और श्री वल्लभस्वामी का डाक-तार का पता : मार्फत : श्री श्यामजी सुंदरदास, कोलीकोड़ (केरल) KOZHIIKODE-1.(KERAL)

विषय-सूची

१	सन् '५७ तक और बाद में !	विनोबा	१
२	काँग्रेस की सदस्यता से मुक्ति : मेरा निवेदन !	वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी	१
३	वर्तमान कोऑपरेटिव फार्मिंग के खतरे !	जयप्रकाश नारायण	२
४	सर्वोदय-दर्शन कैसे सजीव रह सकता है ?	विनोबा	३
५	नये समाज की नींव कैसे डाली जा सकेगी ?	,,	४
६	हरिजन-सेवा की दृष्टि	,,	५
७	सर्वोदय की शक्ति में बाधक प्रवृत्तियाँ !	,,	६
८	सर्वोदय की दृष्टि : शिष्ट-मंडल की रिपोर्ट और सहकारी खेती	लक्ष्मीनारायण भारतीय	६
९	कहीं प्रतिक्रांति में हम न फँस जायँ !	सिद्धराज ढड्ढा	७
१०	तंत्रमुक्ति का अर्थ और स्वरूप	धीरेन्द्र मजूमदार	८
११	सत्य और मैं !	महात्मा भगवानदीन	९
१२	ग्रामगोष्ठी में नन्हे-मुन्नों के बीच !	सुरेश रामभाई	१०
१३	चीन की कृषि-सहकार-प्रणाली : प्रतिवेदन	——	११
१४	भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण	——	११
१५	स्व० देवदास गांधी !	दादा धर्माधिकारी	१२

सिद्धराज ढड्ढा, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव-भूषण-प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : राजघाट, काशी; टे० नं० १२८५।

www.vinoba.in